श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

सेवा-माधुर्य-मर्यादा

• समाधि मन्दिर
श्रील रूपगोस्वामीपाद

ॐ विष्णुपाद जगद्‌गुरु
श्रील भक्तिसुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

सेवा-माधुर्य-मर्यादा

श्रीचैतन्य सारस्वत मठ
नवद्वीप, नदिया

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

सेवा-माधुर्य-मर्यादा

●

प्रपूज्यचरण श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज के व्याख्यानों

एवं पत्रों से तथा प्रपूज्य चरण

की महिमा में निवेदित उनके श्रद्धेय

भक्तों के लेखों से संकलित

एवं

त्रिदण्डी स्वामी श्रीभक्ति अमल परमहंस महाराज द्वारा श्रीचैतन्य

सारस्वत मठ, नवद्वीप से प्रकाशित

अंग्रेजी में प्रकाशित
Dignity of the Divine Servitor
का हिन्दी अनुवाद

प्रथम संस्करण : जगद्गुरु श्रील भक्तिसुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज जी का इकहत्तरवां शुभ आविर्भाव अवसर
दिनांक 24 दिसम्बर 1999

प्रकाशक : स्वामी श्रीभक्ति अमल परमहंस महाराज
श्रीचैतन्य सारस्वत मठ, नवद्वीप, नदिया (प. बंगाल)

अनुवादक : डॉ० शैलेन्द्र नाथ पाण्डे, वृन्दावन

मुद्रक : चित्रलेखा
बाग बुन्देला, वृन्दावन–281121
दूरभाष : 0565-442415, 443415

प्रस्तावना

भगवत् सेवा जीवों का नित्यधर्म है। प्रत्येक अंश का कर्त्तव्य है अपने अंशी की सेवा करना। जीव भगवान् का नित्य अंश है। इसलिए जीव का परम कर्त्तव्य है भगवान् की सेवा करना। इसके लिए आवश्यक है कि जीव नित्य निरन्तर भगवान् का स्मरण करे, भगवत् नाम का उच्चारण करे और चिन्तन करे। संसार में रहते हुए जीव को अन्य अनेक कर्म करने पड़ते हैं और साथ–साथ वर्णाश्रम धर्मों का पालन भी करना पड़ता है। ये धर्म नैमित्तिक धर्म कहे जाते हैं। इनको करते हुए भी जीव नित्य भगवत् चिन्तन कर सकता है। किन्तु इन सबसे परे जीव की एक और अवस्था है वह है भगवद् वैमुख्य। ऐसे जीव अधम कोटि के हैं और भगवत् चिन्तन में उनका अत्यल्प समय भी नहीं लगता। वे निरन्तर भौतिक कार्यों में संलग्न रहते हैं। इस संसार की नश्वरता और मानवजीवन की दुर्लभता का उन्हें कोई ज्ञान नहीं रहता।

आज के भगवत्–चेतना विमुख संसार में जीवचैतन्य में ३ प्रकार के स्वरूप दिखाई पड़ते हैं शोषण Exploitation, त्याग Renunciation और आत्मनिवेदन Dedication। इस संसार में जीवन एक आवश्यकता है। किन्तु प्रत्येक जीव दूसरे जीव का शोषण करते हुए जीवन यापन कर रहा है। शास्त्रों में भी कहा गया है– "जीवो जीवस्य जीवनम्" इस प्रकार से सभी जीवों में समान एवं विपरीत क्रिया होती है। विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि To every action there is an equal & opposite reaction. अतः शोषण का मार्ग उचित नहीं है। त्याग के मार्ग पर भी यदि चले तो भी सारी समस्याओं का समाधान नहीं हो पाता। कर्मों का त्याग करो, घर का त्याग करो, परिवार का त्याग करो, किस–किस का त्याग करोगे, नेति–नेति करते–करते सब समाप्त हो जाता है किन्तु यह क्रम रुकता नहीं। अतः त्याग मार्ग से भी भगवत् चिन्तन संभव नहीं है। इसके लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग है आत्मनिवेदन का। आत्मनिवेदन के मार्ग से जीव अपना सबकुछ भगवान् को समर्पण कर

देता है। यहाँ तक कि अपने सभी कर्म भी वह भगवदर्पण कर देता है। इस मार्ग में जीवन के सभी कर्त्तव्य परिपूर्ण रूप से सफलता को प्राप्त होते हैं। इसमें भगवान् हैं हमारे नित्य प्रभु और हम हैं उन प्रभु के नित्य दास। ऐसी दृढ भावना जीव में नित्य निरन्तर रहती है। यह जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। मानवजीवन का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य भी यही है। भगवान् की भक्ति और उनकी सेवा करने में ही मानवजीवन की परम सार्थकता है।

अनादिकाल से युग प्रवर्तन का क्रम चल रहा है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। एक के बाद दूसरे युग का आगमन होता है। सभी युगों में मानव जीवन का एक ही लक्ष्य है भगवत् चिंतन या भगवान् का नित्य निरन्तर सेवासौभाग्य प्राप्त करना। प्रति युग में इस भगवत् चिन्तन का मार्ग भिन्न–भिन्न है। सत्ययुग में ध्यान मार्ग श्रेष्ठ कहा गया है। ध्यान के द्वारा भगवत् साम्मुख्य प्राप्त किया जाना श्रेष्ठ कर्म है। त्रेता में यज्ञ का अधिक महत्त्व है। भगवत्प्राप्ति के सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में यज्ञ की प्रतिष्ठा की गयी है। द्वापर युग में अर्चन की महत्ता है और कलियुग का सर्वश्रेष्ठ साधन है– नाम–संकीर्तन। भगवान् के नामों का उच्चध्वनि से उच्चारण और गान ही नाम संकीर्तन है। इस कलियुग में केवल नामसंकीर्तन के द्वारा ही भगवत् चिन्तन हो सकता है और यह एक प्रामाणिक व सर्वसुलभ साधन है। मानस में भीं कहा है– "कलियुग केवल नाम अधारा, सुमिरि–सुमिरि नर उतरहिं पारा।" इस भवसागर से एकमात्र भगवन्नाम ही पार लगा सकता है। शास्त्रों में इसकी अनेक उक्तियाँ हैं।

आप इस संसार में आये हो, प्रभु ने आपको मानव जन्म दिया है तो इसे सार्थक कर लो। इस जीवन को अमृत बना लो। कुछ ऐसा कर लो जिससे सदा सर्वदा के लिए एक उदाहरण बन जाये। कबीरदास जी ने कहा है–

कबिरा तुम जब पैदा भये जग हँसा तुम रोये।
करनी ऐसी कर चलो, तुम हँसो जग रोये।।

इस संसार में जब आप आये तथा जन्म हुआ, तुम रोने लगे और

आपके अन्य सगे–सम्बन्धी हर्ष से हँसने लगे–प्रसन्न होने लगे। जीव जब गर्भावस्था में रहता है तब नित्य निरन्तर भगवत् चिन्तन करता रहता है। प्रभु के नित्य दर्शन उसे होते रहते हैं किन्तु जैसे ही जीव जन्म् लेता है तो प्रभु की वह सुन्दर छवि तिरोहित हो जाती है और प्रभु के वियोग में जीव रोने लगता है। जीव का जन्म के समय रोने का यह सैद्धान्तिक कारण है। तो कवि ने कहा है कि संसार में अब आ ही गये हो तो ऐसे कर्म करके चलो जिससे अन्य जीव रोते रह जायें किन्तु तुम हँसते–हँसते अपनी जीवनयात्रा सम्पन्न कर लो।

स्वयं भगवान् अनेक रूपों में अवतरण करते हैं। जगत्–के कल्याण के लिए, जीवों के कल्याण के लिए भी वे स्वयं गुरु रूप में अवतरित होते है। गुरु महाराज उस दिव्य भगवान् की ही एक मूर्ति के रूप में हमारे मध्य विराजमान रहते हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है–

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्त्य बुद्ध्यासूयेत सर्व-देवमयो गुरुः।।

श्रीभागवत ११.१७.२७।।

गुरु कौन हैं ? वह श्रीकृष्ण के प्रिय भक्त हैं जो हमारे हितार्थ गुरु रूप में प्रकट हैं। अतः हमें भगवान् और गुरु में समान भाव रखना है। यदि हम गुरु अवज्ञा करते हैं तो हम अपराध करते हैं। हमें ऐसा विभेद नहीं करना है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

श्रीभगवद्गीता–३.२१।।

श्रेष्ठ पुरुष जैसा–जैसा आचरण करता है, अन्य लोग भी तदनुसार व्यवहार करते हैं। वह जिसे मानदण्ड स्वरूप स्थापित कर देता है, मानव समाज उसी का अनुगमन करता है।

इस प्रकार से ही हमारे गुरुदेव भी विश्व भर में भगवद्भक्ति का प्रचार कर रहे हैं और अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, इटली, मारीशस, साउथ अफ्रीका और अनेकानेक पाश्चात्य देशों में इस संस्कृति और

भगवत् चेतना का विस्तार कर रहे हैं। अनेकों भगवद्–चेतनाशून्य और भगवद्विमुख लोगों को आपने नाम संकीर्तन की शिक्षा देकर भगवद्दास बना दिया है। अपने उपदेशों के माध्यम से आज संसार में आपके सहस्रों शिष्य हैं जो निरन्तर भगवद्वाणी, नाम–गुण–लीला–कथा का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं। और इस भावना को मन में दृढ़ किये हुए हैं कि–

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

प्रस्तुत पुस्तक सेवा-माधुर्य-मर्यादा सुधी पाठकों के कर कमलों में प्रदान करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत पुस्तक The dignity of divine servitor का हिन्दी अनुवाद है जो अँग्रेजी में पूर्व ही प्रकाशित हैं। इस पुस्तक में अनेक सारग्राही प्रवचनों के माध्यम से एक भगवत् सेवक की मर्यादा का वर्णन किया गया है। जीव के स्वरूप, उसके कर्म, जीवन का उद्देश्य, मानव जीवन की सफलता, भगवत् समर्पण आदि अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के अन्तिम भाग में प्रश्नोत्तर के माध्यम से अनेक शिष्यों के प्रश्नों का समाधान गुरुजी की वाणी द्वारा हुआ है। ये सभी प्रश्नोत्तर गुरुजी और शिष्यों के पत्रों से संगृहीत किये गये हैं। अनेक क्लिष्ट प्रश्नों का बड़ी ही सुन्दरता से गुरुजी ने समाधान प्रस्तुत किया है। और एकदम अन्त में गुरुजी की वाणी से निकले हुए कुछ अमूल्य रत्नों का संकलन पुस्तक की उपयोगिता में सहायक है। सूत्र रूप से संक्षिप्त में कही गयी गुरुजी की वाणी इस कलिकाल के जीवों को उनका लक्ष्य प्रदान करने में और भगवत्–चिन्तन में सहायक होगी, इसी आशा के साथ,

जगद्गुरु श्रील
भक्तिसुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी
महाराज जी का इकहत्तरवाँ
शुभ आविर्भाव अवसर–24. 12. 99

स्वामी श्रीभक्ति अमल परमहंस महाराज
श्रील रूप-सरस्वती-श्रीधर सेवाकुंज
96, सेवाकुंज,
श्रीवृन्दावनधाम

ॐ विष्णुपाद जगद्गुरु अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिसुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज

सभापति–सेवायत–आचार्य – श्रीचैतन्य सारस्वत मठ

अनन्तश्रीविभूषित ॐ विष्णुपाद

श्रीश्रील भक्तिरक्षक श्रीधर देव गोस्वामी महाराज

प्रतिष्ठाता–आचार्य – श्रीचैतन्य सारस्वत मठ

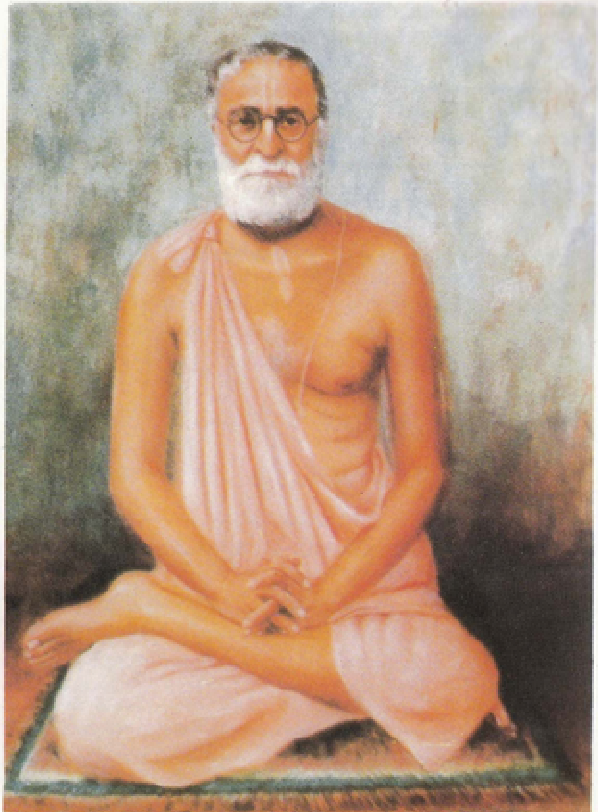

भगवान् श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद

प्रतिष्ठाता–आचार्य – श्रीगौड़ीय मठ

भगवद्‌वाणी एवं मठ के सिद्धान्तों के विश्वव्यापी प्रचार–प्रसार हेतु
चिन्तनशील, प्रखर प्रतिभा एवं आकर्षक व्यक्तित्व के धनी, आचार्यभास्कर
ॐ विष्णुपाद जगद्‌गुरु अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्‌भक्तिसुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज
अपने यौवनकाल में

विषय-सूची

भाग एक

श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज का वैभव

१ : वैष्णव ठाकुर ... १
२ : मूल धारा ... १८
३ : श्रील गुरु महाराज की दिव्य इच्छा और निर्देश ... २३

भाग दो

प्रपूज्यचरण श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज के प्रवचनों से संकलित

प्रथम प्रवचन : ज्ञान का अवतरण ... २५
द्वितीय प्रवचन : अर्पण ... ३६
तृतीय प्रवचन : सुरक्षित यात्रा ... ४४
चतुर्थ प्रवचन : समायोजन ... ४६
पंचम प्रवचन : वर्तमान स्थिति—सर्वोत्तम संभावना ... ५७
षष्ठ प्रवचन : वास्तविक भाग्यशाली ... ६४

भाग तीन

लिखित शब्द

पत्राचार ... ७३
अमूल्य निधि ... ९०
मुख्यालय एवं प्राप्तिस्थान ... ९४

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः।।

• भाग एक •

श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज का वैभव

वैष्णव ठाकुर

— १ —

श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज के १९९० के आविर्भाव दिवस पर सैन मेटो, कैलीफोर्निया, यू० एस० ए०, में पूज्यपाद त्रिदण्डी स्वामी श्रीपाद भक्ति सुधीर गोस्वामी महाराज के दिये गये प्रवचन से।

अनेक वर्षों के पश्चात् हमें श्रील गोविन्द महाराज को महिमामंडित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। तथा मैं वैसा इसलिए कहता हूँ क्योंकि श्रील गोविन्द महाराज हमारे द्वारा सदैव श्रीचैतन्य सारस्वत मठ की पृष्ठभूमि में, उसे गति प्रदान करते एवं अन्य विविध कार्य करते हुए तथा अनेक भक्तों के लिये श्रील गुरु महाराज, श्रील भक्ति रक्षक श्रीधर देव गोस्वामी महाराज के चरणकमलों के प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत देखे गये हैं। उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि जैसा कि हम जानते हैं श्रील गुरु महाराज का स्वभाव लोगों के एक बड़े समूह के साथ चलने का नहीं था। वास्तव में गौड़ीय मठ में अपने समय के पश्चात् तथा अन्य लोगों के साथ सहयोग पूर्वक कार्य करने के कुछ प्रयास के अनन्तर उन्होंने कमोवेश एकान्तवास का निर्णय लिया किन्तु उन्होंने अनुभव किया कि श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद का सम्पूर्ण मिशन उनके एकान्तवास से बाहर निकल आने पर निर्भर था।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद स्वयं एक सुयोग्य भजनानन्दी थे। एक समय वे हरे कृष्ण महामन्त्र के रूप में तीन लाख (३,००,०००) पवित्र नाम प्रतिदिन जपते थे। एक महीने में वह लगभग दस मिलियन नाम के करीब पहुँचता है। उनका व्रत कृष्ण के एक अरब नाम जाप का

था जिसे पूरा करने में लगभग साढ़े आठ वर्ष लगते, तथा वे उसे पूरा करने की प्रक्रिया में थे।

किन्तु उस स्थिति से बाहर निकलकर दूसरों की सहायता करने की उन्हें कोई दैवी प्रेरणा प्राप्त हुयी। कभी कभी ऐसा कहा जाता है कि जब वे एक बार नवद्वीप के हृदय में गंगा यमुना के संगम पर सरस्वती नदी पार कर रहे थे तो कागज का एक टुकड़ा उनकी ओर तैरता हुआ आया जिस पर पवित्र नाम की महिमा सहित भक्तिपरक सेवा का सारांश वर्णन करने वाला श्रीचैतन्य चरितामृत का एक अंश अंकित था। उन्होंने उसका अभिप्राय अपने लिये कर्त्तव्य कर्म के रूप में लिया तथा शेष का हमें पता ही है : वे अपने एकान्त से बाहर आये तथा धीरे–धीरे अनेक लोगों को महाप्रभु के मत में परिवर्तित किया।

श्रील गुरु महाराज को भलीभाँति पता था कि उनके श्रील प्रभुपाद को एकान्तवास की भक्ति पसन्द नहीं थी अतः उन्होंने श्रीचैतन्य सारस्वत मठ की स्थापना की और सोचा, "मैं कोई आक्रामक प्रचारक अथवा उपदेशक नहीं हूँ किन्तु यदि कोई मेरी हरिकथा से कुछ राहत अनुभव करेगा तो मैं उसे मना नहीं करूँगा।"

चूंकि श्रील गुरु महाराज की प्रचार कार्य में सन्निहित क्रियाओं अथवा वस्तुओं के इतने अधिक प्रबन्धन में अभिरुचि नहीं थी, अतः उसके फलस्वरूप एक विशिष्ट सहायक की आवश्यकता अनुभव हुयी। श्रील गोविन्द महाराज उनके पास लगभग १७ वर्ष की आयु के युवा ब्रह्मचारी के रूप में आये। उन्हें गौरेन्दुदास ब्रह्मचारी का नाम दिया गया और एक सप्ताह के भीतर ही श्रील गुरु महाराज अन्य गुरु भाइयों को अपने उत्तराधिकारी के रूप में उनका परिचय करा रहे थे। उन्होंने कृष्णदास बाबाजी महाराज से कहा, "मैं सोचता हूँ यह बालक मेरा उत्तराधिकारी बन सकता है। उसकी परीक्षा लीजिये और मुझे अपना विचार बतलाइये।" इस प्रकार बाबाजी महाराज ने उसकी वैसी परीक्षा ली जो सम्भवतः वही कर सकते थे, और उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वे उक्त प्रकार की विशिष्ट सेवा के लिये योग्य हैं।

जब श्रील गुरु महाराज कलकत्ता में श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद से उनके सितकान्त बनर्जी लेन स्थित प्रयोगशाला की ऊपरी मंजिल पर किराये का एक कमरा लेकर रह रहे थे, गोविन्द महाराज वहाँ एक युवा ब्रह्मचारी के रूप में थे। श्रीलगोविन्द महाराज ने हमें बतलाया कि श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद तथा श्रील गुरु महाराज नियमित रूप से बड़े तल्लीन हो जाते और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, श्रीमद्‌भागवतम तथा सम्बद्ध विषयों पर विचार विमर्श करते हुए पर्याप्त समय बिताते। वे उक्त चर्चा में इतने खो जाते कि श्रील प्रभुपाद द्वारा निचली मंजिल पर उनके फारमेस्यूटिकल व्यापार की उपेक्षा अंशतः उसके मन्दी का कारण बनी।

कभी–कभी श्रील गोविन्द महाराज श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद के साथ नाश्ता करते और उन्होंने कहा, "नाश्ते तक के लिये स्वामी महाराज सदैव घी में तली कुछ पूड़ियाँ तथा थोड़ी छौंकी हुयी सब्जी तथा उस प्रकार की विभिन्न वस्तुऐं लेते।" किन्तु गोविन्द महाराज और गुरु महाराज व्यवहारतया हर अवसर पर मूड़ी (भुने चावल) लेने के इच्छुक रहते। गोविन्द महाराज ने कहा–कि स्वामी महाराज उन्हें पूड़ी और सब्जी लेने के लिये सदा आमंत्रित करते किन्तु यह कहकर मना कर देते, "नहीं नहीं मेरे लिये मूड़ी ही सुन्दर है," किन्तु स्वामी जी महाराज आपत्ति करते, "मूड़ी ? वह तो पेट को केवल धोखा देना है।" श्रील गोविन्द महाराज वहाँ अपने निवास के दौरान बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने कहा, "स्वामी जी महाराज मेरी कक्षा लिया करते तथा वे मुझे अन्य वस्तुओं के साथ–साथ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पढ़ाते।"

जो बात मैं कह रहा हूँ वह यह कि वे वहाँ बहुत पहले से थे और एक विशेष स्थिति में थे। जब गौड़ीय मठ के विभिन्न दलों की मीटिंग होती, श्रील गोविन्द महाराज वहाँ होते और उन्होंने श्रील गुरु महाराज के साथ उनकी विभिन्न वार्त्ताओं को देखा। वे परिचर्चाओं तथा सभी संलग्न व्यक्तियों को जानते हैं। इसलिये वे गौड़ीय मठ में हर व्यक्ति द्वारा भलीभाँति जाने और माने जाते हैं तथा उन्होंने उन्हें बहुत लम्बे काल से जाना है।

गौड़ीय मठ के देदीप्यमान महानुभावों से वे इतने अधिक परिचित थे तथा उनके व्यक्तित्वों को व्यक्तिशः इतना अधिक जानते थे कि एक बार वे जब श्रील गुरु महाराज के कुछ अन्य गुरु भाइयों के साथ एक कार्यक्रम में जा रहे थे तो अधोलिखित घटना हुयी। श्रील गुरु महाराज थे नहीं अतः गोविन्द महाराज गौड़ीय मठ के एक आचार्य, श्रीपाद भक्ति सारंग गोस्वामी महाराज के साथ, उनके कुछ शिष्यों सहित एक प्रचार कार्यक्रम में जा रहे थे। जब वे सभा स्थल पर पहुँचने वाले थे, गोविन्द महाराज ने आकाश में ऐसे लक्षण देखे कि बारिश आने वाली है। तब वे श्रीपाद गोस्वामी महाराज के प्रमुख शिष्यों में से एक की ओर मुड़े और कहा, "क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे गुरु महाराज अपने भाषण में कौन सा श्लोक निरूपित करने जा रहे हैं। ?"

शिष्य ने उत्तर दिया, "वस्तुतः नहीं। मुझे नहीं मालूम कि वे क्या कहने जा रहे हैं अथवा किस पर बोलने वाले हैं।"

"अच्छा मैं बताता हूँ।"

"वह कैसे सम्भव है ?"

उस पर गोविन्द महाराज ने उत्तर में केवल यह कहा, "मुझे मालूम है वे किस श्लोक पर बोलने जा रहे हैं।" तत्पश्चात् उन्होंने निम्नलिखित श्लोक सुनाना आरम्भ किया :

जदच्युत कथालापः कर्णपीयूषवर्जितम्।
तद्दिनं दुर्दिनं मन्ये मेघाच्छन्नं न दुर्दिनं।।

इस श्लोक का अर्थ है; "सामान्यतया हम एक अच्छे दिन का निर्णय मौसम से लगाते हैं। यदि बाहर धूप खिली है तो हम सोचते हैं कि दिन अच्छा है और यदि मौसम खराब है तो हम सोचते हैं कि दिन बुरा है। किन्तु एक वैष्णव का मापदण्ड है कि वह किसी दिन को शुभ तब मानता है जब या तो स्वयं उसने हरिकथा की हो या उक्त दिन कोई हरिकथा श्रवण की हो।"

वे वहाँ पहुँचे तथा, जैसा कि श्रील गोविन्द महाराज द्वारा भविष्यवाणी

की गयी थी, उस आचार्य अर्थात् श्रील गुरु महाराज के गुरु भाई ने अपना व्याख्यान इसी श्लोक के उच्चारण एवं विवेचन से आरंभ किया। यह ध्यान देने योग्य है कि गोविन्द महाराज के निरीक्षण के अनुसार बारिश होने जा रही थी, किन्तु उन्होंने उसका सम्बन्ध इस तथ्य से जोड़ा कि वह सम्भवतः हरेक का मनोबल गिरायेगा, तथा श्रीपाद गोस्वामी महाराज का स्वभाव जानते हुए, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वे उक्त श्लोक का चयन मीटिंग का वातावरण बदलने के लिये करेंगे।

श्रील गोविन्द महाराज ने इस प्रकार न केवल अपने समकालीनों से प्रतिद्वन्द्विता की अपितु अत्यल्प आयु में ही वे श्रील गुरु महाराज के गुरु भाइयों से भी टक्कर लेने लगे। ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने तनिक कुटिल ढंग से एक संन्यासी को चुनौती दी जिसकी ख्याति एक बड़े पंडित के रूप में थी। गोविन्द महाराज ने कहा–"क्या मैं आपसे एक प्रश्न कर सकता हूँ ?"

"हाँ वह क्या है?"

"क्या ईश्वर आत्महत्या कर सकता है ?" गुरु भाई क्रुद्ध हो गये, "आप ऐसा प्रश्न क्यों पूछ रहे हैं ? यह एक अच्छा प्रश्न नहीं है।"

गोविन्द महाराज ने कहा, "हो सकता है यह एक अच्छा प्रश्न न हो, पर क्या आप उसका उत्तर दे सकते हैं ?"

"आपको ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिए।"

"मुझे मालूम है पर क्या आप उसका उत्तर दे सकते हैं ?"

"आप इस प्रकार मेरे ऊपर दबाव क्यों डाल रहे हैं ?"

तब गोविन्द महाराज ने कहा, "हाँ, मुझे उत्तर मालूम है मैं तो केवल यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप भी उसका उत्तर दे सकते हैं ?"

तब गुरु महाराज के गुरु भाई ने कहा, "तुम केवल एक बच्चे हो, तुम क्या जानते हो ?"

उस पर गोविन्द महाराज ने यह श्लोक उद्धृत किया :

वालोहं जगतां नाथ न मे वाला सरस्वती।
वालब्यालस्य गरलं किं न हन्ति कलेवरम्।।

जिसका सारांश है : "एक शिशु कोबरा भी आपको मार सकता है!" तब वे स्वयं अपने प्रश्न का उत्तर यह कहते हुए देने को उद्यत हुए, "हाँ, ईश्वर आत्महत्या कर सकता है। वे ब्रह्म में, अपने निर्गुण रूप में आत्महत्या करते है : ब्रह्मज्योति में, जहाँ भगवान् के अणु परिमाण अंश, जीव, अपनी वैयक्तिकता खो देते हैं। उस रूप में ब्रह्म आत्महत्या करता है।" श्रील गुरु महाराज यह कहानी प्रायः कहते किन्तु मैंने उन्हें कभी उसे श्रील गोविन्द महाराज से जोड़ते नहीं सुना। केवल बाद में मैंने सुना कि वह लड़का कौन था ! श्रील गुरु महाराज कभी–कभी टिप्पणी करते," किसी को यह नहीं पूछना चाहिए कि क्या ईश्वर आत्महत्या कर सकता है ?"

श्रील गोविन्द महाराज ने श्रील गुरु महाराज के गुरु भाइयों के समक्ष अनेक बार अपनी कुशाग्रता दिखलायी। एक अवसर था इमलीतला मन्दिर, श्रीपाद भक्ति सारंग गोस्वामी महाराज द्वारा वृन्दावन में स्थापित एक मन्दिर। महाप्रभु ने जब पहली बार वृन्दावन में प्रवेश किया तो वे एक पेड़ के नीचे बैठे जिसे इमलीतला कहते थे और जो अब उस मन्दिर के आँगन में है। वहाँ दीवाल पर श्रील गुरु महाराज द्वारा रचित संगमरमर पर अंकित कुछ श्लोक हैं जो महाप्रभु के वृन्दावन आगमन की सही तिथि एवं इमलीतला के नीचे उनकी लीला के समय का वर्णन करते हैं।

संस्कृत श्लोक में संख्या का वर्णन निहितार्थ के रूप में करने की विधियाँ हैं। उदाहरण के लिये यदि आप कहते हैं वेद तो उसका अर्थ हो सकता है तीन या चार। ऐसा इसलिए कि कभी–कभी यह माना जाता है कि वेद के तीन खण्ड हैं, तो कभी उन्हें चार माना जाता है। ऐसे अन्य शब्द भी हैं जिनसे संख्या सम्बद्ध है। इस प्रकार एक रहस्यात्मक, काव्यात्मक रूप में श्रील गुरुमहाराज ने तिथि का उल्लेख किया है यद्यपि उक्त तिथि का सामान्य रूप से पता नहीं है; उसका

श्रीचैतन्य चरितामृत एवं अन्य स्थानों पर संकेत मात्र और केवल एक साधारण वर्णन उपलब्ध होता है।

वहाँ अंकित श्लोकों को प्रथम बार पढ़ते समय श्रील गुरु महाराज के गुरु भाई पूरी तरह समझ नहीं सके कि उन्होंने क्या लिखा है। उनकी समझ के अनुसार कुछ लोग यहाँ तक सहमत थे कि श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर उक्त तिथि के विषय में भिन्न धारणा के रहे होंगे। अतएव युवा गौरेन्दु ब्रह्मचारी, हमारे श्रील गोविन्द महाराज पुनः आये तथा कहा, "ओह, मुझे ज्ञात है कि उसका अर्थ क्या है" और वे सब चकित रह गये। तब उन्होंने वहाँ अंकित तिथि की व्याख्या की। उन लोगों ने प्रतिक्रिया व्यक्त की, "परन्तु वह श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर द्वारा दी गयी तारीख से भिन्न है।"

गोविन्द महाराज ने उत्तर दिया, "वह हो सकता है किन्तु जो कुछ मेरे गुरु कहते हैं ठीक है। श्रील गुरु महाराज जो कुछ कहते हैं वह सत्य है, इसका महत्व नहीं कि अन्य कोई उससे मतभेद रखता है, वह कोई भी हो। यह सत्य है और मैं उसे सिद्ध कर सकता हूँ।" तत्पश्चात् उन्होंने विभिन्न अंशों की व्याख्या करनी आरम्भ की और स्पष्ट किया कि किस प्रकार श्रीचैतन्य चरितामृत से अनुमान के आधार पर श्रील गुरु महाराज उन निष्कर्षों तक पहुँचे। उन्होंने सबको स्तब्ध कर दिया।

श्रील गोविन्द महाराज सदा बहुत सक्षम हैं, विशेषकर श्रील गुरु महाराज और उनकी अवधारणा को व्यक्त करते समय, तथा उनके पास एक आश्चर्यजनक वैष्णव हृदय भी है। एक बार वह निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित हुआ :

गोपियों तक में दलबन्दी तथा पार्टी भावना है, यह उन्हें यदा–कदा एक दूसरे के साथ नहीं होने देती; तथा ऐसा ही उनके अनुगामियों में भी है। इसी प्रकार श्रील गुरु महाराज के गुरुभाइयों और उनके शिष्यों के विभिन्न गुटों में कुछ पारस्परिक मतभेद थे। एक दिन उनमें से कई अपने शिष्यों के साथ एक पवित्र त्यौहार को सुशोभित करने वृन्दावन

जा रहे थे। ऐसा हुआ कि श्रीपाद तीर्थ महाराज और उनके शिष्यगण उसी गाड़ी के स्टेशन पर उसी समय वहाँ उपस्थित थे जिस पर श्रील गुरु महाराज और उनका परिकर। श्रीपाद तीर्थ महाराज के विषय में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कभी–कभी कहते कि उनके सर्वाधिक प्रिय, प्रभुपाद प्रेष्ठ हैं तथा उन्होंने तीर्थ महाराज को महिमामंडित करने के लिये बाग बाजार मठ, कलकत्ते में संगमरमर पर श्लोक तक अंकित कराये। पर उस समय श्रील गुरु महाराज और श्रीपाद तीर्थ महाराज में बोल–चाल नहीं थी।

गोविन्द महाराज ने तीर्थ महाराज पर ध्यान दिया और ऐसे महिमामय व्यक्तित्व को देखकर दो दलों के बीच मतभेद के फलस्वरूप उन्हें उचित सम्मान न दिये जाने पर उन्हें कुछ क्षोभ हुआ। तब वे गये और श्रील गुरु महाराज से पूछा, "तीर्थ महाराज वहाँ हैं। उन्हें प्रणाम करने के लिये मैं अपने को बाध्य अनुभव करता हूँ। वैसा करने के लिये क्या मैं आपकी अनुमति पा सकता हूँ।"

श्रील गुरु महाराज ने उत्तर दिया, "हाँ–हाँ आप कर सकते हैं।" उस समय तक तीर्थ महाराज और उनके समूह के भक्त थोड़ा कठोर थे, किन्तु श्रील गोविन्द महाराज वहाँ गये और तीर्थ महाराज को दण्डवत् निवेदित किया तथा उनसे और उनके दल से कुछ बातचीत की, एवं अतिशीघ्र वे सब मुस्करा रहे थे : उन सबको प्रसन्न करने का उनके पास एक मार्ग था।

गोविन्द महाराज को भक्तों को सदा महिमामंडित करना पसन्द था और उन्होंने उनकी प्रशंसा में अनेक छन्द लिखे। अपनी कला से वे शब्दों का प्रयोग इस प्रकार करते कि कभी–कभी हर श्लोक से तीन या चार अर्थ निकाले जा सकते थे। कभी–कभी अन्य लोग उनकी इच्छा से भिन्न रूप में उनके श्लोकों की व्याख्या करते, जैसा कि तब स्पष्ट हुआ जब उन्होंने श्रीपाद केशव महाराज की प्रशस्ति में एक कविता लिखी। केशव महाराज ने श्रील गुरु महाराज से संन्यास लिया तथा वे गौड़ीय मठ के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। गोविन्द महाराज द्वारा रचित कविता से वे इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने उसे अपने मठ के जर्नल

में प्रकाशित किया।

बाद में जब कृष्णदास बाबाजी महाराज आये और उसे पढ़ा उन्होंने देखा कि उसमें आद्यन्त एक द्वयार्थकता है। यद्यपि सतह पर वह प्रशस्ति थी, उसको पढ़ने का एक और मार्ग था जिससे स्पष्ट होता था कि वे केशव महाराज का मजाक उड़ा रहे हैं। उस घड़ी तक वहाँ सारे भक्त कह रहे थे, "देखो उन्होंने क्या लिखा है ! श्रील श्रीधर महाराज के शिष्य ने जो लिखा है वह वास्तव में विस्मयजनक है। क्या वह महान् नहीं है।" किन्तु कृष्णदास बाबा जी महाराज वहाँ गये और केशव महाराज से कहा, "क्या आप देखते नहीं कि उन्होंने क्या किया है ?"

केशव महाराज ने उत्तर दिया, "उनकी रचना बहुत अच्छी है। आपने क्या पाया है ?"

तब कृष्णदास बाबा जी महाराज ने कहा, "बहुत अच्छा। पर इसका अर्थ और भी कुछ हो सकता है.......।"

केशव महाराज ने आरम्भ किया, "आप ठीक कहते हैं......" तथा उन्होंने गोविन्द महाराज को बुलवाया और पूछा "क्या यही है जो आपका आशय था ?"

"ओह, न न महाराज !"

हर माध्यम से वे सदा श्रील गुरु महाराज के चिर सखा और सतत् सहचर थे। जब श्रील गुरु महाराज श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद से मिलने मायापुर जाते, श्रील गोविन्द महाराज वहाँ सदैव ही होते। हमारे पास एक चित्र है जिसमें श्रील स्वामी महाराज तथा श्रील श्रीधर महाराज एक ही व्यासासन पर विराजमान हैं तथा माइक्रोफोन पर हैं श्रील गोविन्द महाराज। उस दिन वे श्रील गुरु महाराज के आग्रह पर बोले जो स्वयं अस्वस्थ अनुभव कर रहे थे तथा उस कारण बोलने के अनिच्छुक थे।

गोविन्द महाराज ने अपने प्रवचन में रघुपति उपाध्याय द्वारा कहा

गया एक श्लोक उद्धृत किया।

कं प्रति कथयितुमीशे सम्प्रति को वा प्रतीतिमायातु।
गोपतितनया–कुंजे, गोपवधूटीवितं ब्रह्म।।

(चैतन्यचरितामृत मध्य १६.६८)

"मेरे ऊपर विश्वास कौन करेगा यदि मैं उनसे कहूँ कि परम ब्रह्म कुँज में गोपियों के साथ खेल रहा है ? इस बात का विश्वास ही कौन करेगा ?" जिस रूप में उन्होंने श्लोक का उपयोग किया उसका तात्पर्य था, "अतः कौन विश्वास कर सकता था कि जिन्हें हम पहले 'अभय बाबू के रूप में जानते थे, जो श्रीगौड़ीय मठ के एक नियमित सहभागी सत्संगी थे,–विभिन्न पारिवारिक दायित्वों, व्यापार आदि से घिरे एक सद्गृहस्थ होते थे, वही अब श्रील स्वामी महाराज, एक विश्व आचार्य के रूप में, सम्पूर्ण संसार में, भलीभाँति विख्यात हैं। उन्होंने अनेक असम्भव कार्यों में भी इस परम असंभव कार्य को कर दिखाया है।"

श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद वास्तव में इस प्रकार के उपयुक्त महिमामंडन को पसन्द करते थे जिसे प्रस्तुत करने में श्रील गोविन्द महाराज सदा सक्षम हैं।

यह सर्वविदित भले न हो पर रचना के क्षेत्र में श्रीलगोविन्द महाराज ने बहुत कुछ दिया है। श्रील गुरु महाराज के शब्दों में : "गोविन्द महाराज का योगदान बहुत बड़ा है।" श्रील गुरु महाराज की अध्यक्षता वाली पंडित सभा ने गोविन्द महाराज को विभिन्न उपाधियाँ प्रदान कीं, एक थी भक्ति शास्त्री जिसके पश्चात् उपदेशक पण्डित, महोपदेशक पंडित एवं तदनन्तर ज्योतिर्भूषण विद्या रंजन आदि। उनका एक भूषण संस्कृत अलंकार है–यह ज्ञान कि संस्कृत भाषा का समुचित प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। जब गुरु महाराज अपने द्वारा रचित विभिन्न श्लोकों को पूरा करते, तो गोविन्द महाराज विविध विकल्पों का सुझाव देने में उनके साथ होते। इनमें से कुछ श्लोक कभी प्रकाशित ही नहीं हुए और कुछ कहीं अब लिखित प्राप्त नहीं हैं : इस समय वे

केवल गोविन्द महाराज के भीतर हैं। हमारे लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि उन्हें वे न केवल याद हैं अपितु वे उन्हें बड़े सुन्दर रूप में प्रस्तुत भीं कर सकते हैं।

श्रील गुरु महाराज ने यह भी कहा है कि गुरु और शिष्य में सम्बन्ध केवल दास्य–रस अथवा स्वामी–सेवक तक सीमित नहीं है अपितु सख्य भाव भी है, तथा कतिपय उदाहरणों में गुरु के प्रति शिष्य में वात्सल्य प्राप्ति आदि हेतु पितृ–भाव भी होता है। सत्य यह है कि श्रील गुरु महाराज और श्रील गोविन्द महाराज घनिष्ठ मित्र थे। इन सारे स्थलों के अनन्तर की दूरी उनकी घनिष्ठता द्वारा दूर हो गयी थी। मुझे याद है जब हम कोई विशेष निर्णय लेने हेतु श्रील गुरु महाराज से गोपनीय ढंग से कहते, गुरु महाराज अपना विचार विशिष्टरूप से प्रकट करते, और हम उसे सुनते। तब वे, जैसा कि होता, सजीव होकर, गर्व के साथ अपने हाथ माथे पर रख लेते और कहते, "किन्तु गोविन्द महाराज कहते हैं कि हमें ऐसा करना चाहिए, और मैं सोचता हूँ कि वे जो कुछ सुझाव देते हैं वास्तव में बेहतर हो सकता है।"

मुझे श्रील गुरु महाराज द्वारा कही गयी अन्तिम बातों में से एक स्मरण हैः जब वे अपना आचार्यत्व श्रील गोविन्द महाराज को प्रदान कर रहे थे उन्होंने कहा, "वस्तुतः अनेक रूपों में वे मुझसे अधिक योग्य हैं," तथा "यदि तुम उन्हें अधिक निकटता, अधिक वैयक्तिक रूप में जानोगे, तो तुम समझोगे कि वे किस कोटि के अलौकिक चरित्र हैं।"

पुनश्च, कुछ ऐसा है जिसको मेरे लिये अपने स्मृति पटल से मिटा पाना कठिन, बल्कि असंभव है, और मैं वैसा करने का प्रयास भी नहीं करता : मुझे शीघ्र ही अमेरिका जाना था और वह श्रील गुरु महाराज की प्रकट लीलाओं की समाप्ति के तुरन्त निकट की बात थी। उन्होंने मुझे अपने कक्ष में बुलवाया और जानते हुए कि मैं पश्चिम की ओर जा रहा हूँ और हो सकता है फिर कभी उनसे मिलना न हो पाये, उन्होंने मुझे अपने बिस्तर के पास बुलाया। मैं उनके बहुत निकट था : आँख आँख के पास, चेहरा चेहरे के। उन्होंने मेरे दोनों कन्धों को बड़े कसके पकड़ा और तब मेरे शरीर को झकझोरना आरम्भ किया जिसमें मेरा

सिर चकराने लगा, तथा उन्होंने कहा, "गोस्वामी महाराज, आपको मेरी यह अन्तिम शिक्षा हो सकती है..........................।" सारा समय वे मुझे केवल हिलाते रहे और फिर कहा, "यह मेरी हार्दिक और उत्कट इच्छा है कि आप गोविन्द महाराज की सहायता करें। आप समझें ?" मैंने कांपते हुए स्वर में उत्तर दिया, "हाँ महाराज।"

वह वैष्णवों का मार्ग है, और भगवान् शिव के शब्दों में वह पुनः और स्पष्ट हुआ है :

आराधनानां सर्वेषां, विष्णोराराधनं परम्

"पूजा के समस्त रूपों में विष्णु की पूजा सर्वोत्तम मानी जाती है।"

तस्मात्परतरं देवि, तदीयानां समर्चनम्

"किन्तु पूजा का सर्वोच्च और पूर्ण विचार उसकी सेवा है जो विष्णु को परम प्रिय हो।" बिना उस शक्ति के जो उन्हें परम प्रिय है मात्र विष्णु की पूजा पर्याप्त नहीं है। इसलिये यदि हम उसे दूसरे रूप में देखें तो सर्वोत्तम संभव सेवा श्रीमती राधारानी की सेवा है। वह विष्णु अथवा कृष्ण से भी उच्चतर सेवा है।

तदीय—उन्हें क्या प्रिय है ? गौएं उन्हें प्रिय हैं, वृन्दावन उन्हें प्रिय है, उनके मित्र उन्हें प्रिय हैं, उनकी मा....................., ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, किन्तु जो उन्हें सर्वाधिक प्रिय है वह हैं श्रीमती राधारानी। वे स्पष्ट कर रहे हैं कि उनकी (राधारानी) सेवा सर्वोपरि सेवा है। सर्वोच्च अवधारणा में श्रीमती राधारानी गुरु हैं। अतएव यदि हम उसी अवधारणा को और अधिक विस्तृत करें, तो ऐसे भी हैं जो गुरु को परम प्रिय हैं। यदि हम खोजें तो पायेंगे कि कोई ऐसा है जिसकी सेवा अन्य सभी को फीकी कर देती है। उनके सम्बन्ध से हमारी अपनी सेवा का भाव अधिकाधिक बढ़ सकता है।

गुरु महाराज यह उदाहरण देने के बड़े इच्छुक रहते कि एक छोटा पूंजीपति अपनी छोटी सम्पत्ति को बड़े पूंजीपति के संसाधनों के साथ जोड़कर बड़े लाभ में रहता है। अपनी छोटी पूंजी से हममें से

कोई एक विशाल बहुराष्ट्रीय कार्पोरेशन में कुछ शेयर खरीद सकता है और उस प्रकार मुनाफा कमा सकता है। इसी प्रकार भक्तगण उनसे जुड़ सकते हैं तो भक्ति में आगे हैं तथा, यद्यपि हमारे पास एक अल्प सेवा राशि.है, उनके प्रति की गई कोई सेवा किसी उच्चतर से जोड़ देती है, और हम उससे एक बड़ा पारिश्रमिक प्राप्त कर लेते हैं। अतः मेरे मन में कोई शंका नहीं है कि श्रील गोविन्द महाराज श्रील गुरु महाराज के सर्वाधिक प्रिय शिष्य और सहयोगी हैं, तथा उनकी सेवा करने, उन्हें महिमामंडित करने, तथा उस सेवा में किसी प्रकार भाग लेने से जो उन्हें श्रील गुरु महाराज द्वारा प्रदान की गयी है, हमारी स्थिति में वृद्धि होती है।

यह मात्र संयोग नहीं था कि श्रील गुरु महाराज के अधिकार की सारी वस्तुऐं गोविन्द महाराज को सौंप दी गयीं। यदि आप श्रील गुरु महाराज की विभिन्न वसीयतों (विल) को धान से देखें तो बारंबार इस बात पर बल देते हुए पायेंगे कि हर अन्तिम सम्पत्ति उनको सौंप दी गयी है। यदि कोई धान का खेत है जिस पर कहीं नवद्वीप में उनका अधिकार है तो वे उसके पूर्ण प्रभारी हैं। पुनश्च, अन्तिम इच्छा और वसीयत में श्रील गुरु महाराज स्वामी भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज को श्रीचैतन्य सारस्वत मठ का, हापानिया मठ का, कृष्णानुशीलन संघ का तथा अपने मठ के अन्तर्गत अन्य अनेक मठों का स्पष्टरूप से आचार्य नियुक्त करते हैं।

महान् वैष्णव कभी अधिकार भावना से नहीं सोचते, उसके स्थान पर वे मानते हैं कि उनके गुरु द्वारा उन्हें कोई सेवा सौंपी गयी है तथा वह सेवा करने के लिये वे बाध्य हैं।

मैंने गोविन्द महाराज से सुना कि, "वैष्णव अन्य वैष्णवों को पहचानते हैं।" यह वैष्णव अपराध का विलोम है। वे अन्य वैष्णवों में दोष दर्शन से बचते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि वह उनके आध्यात्मिक विकास के लिये हानिकारक है—वास्तव में वह एक ऐसी वस्तु है जो भक्तिलता को समूल उखाड़ने वाली कही जाती है। किन्तु हमारा ध्येय अन्य भक्तों के प्रति अपराध से बचना मात्र नहीं है, यद्यपि हमारे लिये

वह एक स्पृहणीय लक्ष्य हो सकता है। उससे परे हमें वैष्णवों को मान्यता और आदर देकर एवं उनकी सेवा कर प्रगति करनी है और अपने को समृद्ध करना है, तथा वास्तव में हमें ऐसा अवश्य करना चाहिए। हमें ऐसा उस सीमा तक करना चाहिए जैसा कि श्रील गुरु महाराज के उदाहरण में दिखलायी पड़ता है जो इस्कॉन के भक्तों के प्रति इतने श्रद्धालु थे।

श्रील गुरु महाराज बड़े उदात्त थे तथा गौड़ीय मठ के सदस्यों का उनके प्रति बड़ा सम्मान था। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने यहाँ तक कहा कि गुरु महाराज भक्ति विनोद ठाकुर के विचार को ही पल्लवित कर रहे हैं, किन्तु इतनी उत्कृष्ट योग्यता और समादर के बावजूद, श्रील गुरु महाराज का ऐसा दृष्टिकोण कभी नहीं रहा कि एक बड़े गुरु एवं आचार्य हैं तथा इस्कॉन के सदस्य मात्र नये नवाब हैं। उन्होंने कभी नहीं सोचा, "ये नये खिलाड़ी, इन्हें क्या मालूम ?"बल्कि उन्होंने देखा, "ओह महाप्रभु से उनका कुछ सम्बन्ध है–उनका सम्मान होना चाहिए।"

उनका दृष्टिकोण श्रीचैतन्य चरितामृत के श्लोक की भाँति था :

श्रीपाद धर मोर गोसाइंर सम्बन्ध।
ताहा विना अन्यत्र नाहि एइ प्रेमार गन्ध।।

(चै० च० मध्य ६.२८६)

सनोड़िया ब्राह्मण ने जब महाप्रभु के आह्लादमय प्रेम को देखा, उसने सोचा, "ओह, इधर देखो, यह परम आश्चर्यजनक वस्तु है। मैंने केवल माधवेन्द्रपुरी को इतनी उच्च भावनाओं से अभिभूत देखा है, इसलिये मैं समझ सकता हूँ कि महाप्रभु का उनसे कोई संबंध अवश्य होगा।" इसी प्रकार श्रील गुरुमहाराज ने सदैव देखा कि श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद की कृपा से, अनेक लोगों के महाप्रभु से कुछ संबंध हैं। उन्होंने वास्तव में उसे पसन्द किया तथा उन्हें उनकी सेवा के लिये मान्यता प्रदान की।

एक बार मैंने श्रील गोविन्द महाराज को वह अनुभव सुनाया जो

हम सबको मठ में जाने पर होता है : "आप और यहाँ अन्य लोग, हरेक के लिये इतनी अभिप्रशंसा व्यक्त करते हैं–कि कभी–कभी वह परेशानी के बिन्दु पर पहुँच जाता है। मैंने पुनः उल्लेख किया, "महाराज मुझे मालूम नहीं पर कभी–कभी मैं सोचता हूँ कि वह कुछ बहुत अधिक होता है !" उस पर उन्होंने कहा," नहीं हमें वैसा अवश्य करना चाहिए।" यह कोई मनमाने प्रकार की वस्तु नहीं है अपितु हमें वास्तव में उसे अवश्य करना चाहिए यदि हम महाप्रभु की कृपा की इच्छा रखते हैं। यदि हम उनके आशीर्वाद की आशा रखते हैं तो हमें उन लोगों को मान्यता देनी होगी तथा प्रशंसा करनी होगी जिन्हें उनसे पहले ही कुछ कृपा अथवा आशीर्वाद प्राप्त है"।

जब श्रीमती राधारानी तक कृष्ण के साथ होती हैं तो वे कभी–कभी उनकी वंशी के प्रति उलाहना देती हैं : "वह वंशी उनके अधरों का अमृत सदैव पान करती है पर मुझे तो वह कभी–कभी ही मिलता है।" यह सर्वोच्च भक्त का एक उदाहरण है जो किसी निम्नस्थित व्यक्ति को इतना ऊंचा उठाता है।

'श्रीकृष्णानुसंधान' प्रकाशित करने के पश्चात् मुझे गोविन्द महाराज से एक पत्र मिला। इस एक छोटे से पत्र में ऐसा प्रभाव था कि जैसे ही मैंने उसे पढ़ा मैं लगभग बेहोश हो गया। अन्य लोगों का महिमामंडन, यह सिद्धान्त, भले ही वे कितने ही निम्नस्तर पर हों बहुत सुदृढ़ रूप से स्पष्ट था। उन्होंने लिखा, "यद्यपि मैं श्रील गुरु महाराज के चरण कमलों की सेवा का ३५ वर्षों से प्रयास कर रहा हूँ किन्तु आप मुझसे आगे निकल गये हैं।" उन्होंने अपने पत्र द्वारा ऐसा दिखाने का प्रयास किया कि जैसे वे स्वयं कुछ कर सकने में असफल रहे हैं, किन्तु मैंने कुछ प्राप्त कर लिया है, तथा वह भी इतने अल्प समय में। एकमात्र स्थान जहाँ मैंने अपनी स्वयं की स्थिति घटाकर दूसरों को महिमामंडित करने की भावना देखी वह महान् वैष्णवों की कृतियां और उनका जीवन है। गोविन्द महाराज एक वैष्णव ठाकुर हैं।

अतएव किसी न किसी माध्यम से वैष्णवजन हमें अपने प्रेम का अनुभव करने को कभी न कभी बाध्य कर देते हैं–वह प्रसाद वितरण

द्वारा हो, अन्य भक्तों की प्रशंसा द्वारा हो, अथवा उनके अनेक, विविध प्रेमपूर्ण व्यवहार द्वारा—वे अपरिहार्य रूप से हमारे हृदयों को पकड़ लेते हैं।

एक अवसर पर मुझे अपने एक मित्र के माध्यम से जो वहाँ था, मठ का एक समाचार मिला, किन्तु समाचार मेरे लिये कुछ चिन्ता का था। उसका संबंध कुछ ऐसे कार्य से था जिसे मैं चाहता था कि किया जाये किन्तु किया नहीं जा रहा था, और मुझे संकेत यह था कि मैं एक बाहरी व्यक्ति हूँ तथा मठ की आन्तरिक कार्यप्रणाली से अवगत नहीं हूँ। मेरा अनुमान है कि हर कोई जानना चाहता है कि उसके गुरु उसे प्यार करते हैं, अतः मुझे चोट पहुँची क्योंकि वही तो वास्तव में बात थी जिससे मैं भीतरी रूप से जानना चाहता था—एवं श्रील गुरु महाराज इसे जानते थे। वे मुझे अनुभव कराना चाहते थे कि मैं एक बड़ा घनिष्ठ मित्र था, और उससे मुझे बड़ा प्रोत्साहन मिलता था; किन्तु तब किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से कोई उल्टी खबर प्राप्त हुयी। मैं थोड़ा विक्षुब्ध हुआ अतः मैंने उसे व्यक्त करते हुए मठ को एक पत्र लिखा।

मुझे श्रील गुरु महाराज से एक उत्तर प्राप्त हुआ जिसमें जो कुछ मेरे कानों तक पहुँचा था उससे वे बहुत व्यग्र थे। उन्होंने मुझे उसके विपरीत आश्वासन दिया और तब कहा, "यह इतना अनर्गल है कि जब गोविन्द महाराज ने इसे सुना तो उनके हृदय से रक्त टपक पड़ा।"

गोविन्द महाराज सदा से मेरे व्यक्तिगत शुभचिन्तक स्नेही रहे हैं, तथा मुझे यह जानकर कि श्रीलगुरु महाराज के प्रयास के पश्चात् मार्गदर्शन तथा प्रेरणा के लिये वे उपस्थित हैं पुनराश्वासन एवं विश्वास प्राप्त होता है। श्रील गोविन्द महाराज में विनोद का भी गहरा भाव है और सचमुच जब मैं भारत जाता हूँ मैं वहाँ उनके सान्निध्य के कतिपय क्षणों के लाभ के एकमात्र उद्देश्य से जाता हूँ, क्योंकि वह बड़ा शोधक और पुनर्जीवन प्रदान करने वाला होता है। जैसाकि श्रीचैतन्यचरितामृत में उल्लेख है : लव—मात्र साधु—संगे सर्वसिद्धि हय—एक शुद्ध भक्त के क्षण—मात्र के संग से सारी सफलतायें प्राप्त हो जाती हैं।

इसलिये उनके प्रति अपना अभिप्रशंसन व्यक्त करने के सुअवसर से मुझे विविध रूप से प्रसन्नता होती है, मुझसे वह कितने भी लघु और तुच्छ रूप में निःसृत होता हो। श्रील गुरु महाराज संबंधी मेरे जीवन में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं के लिये वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हैं, अतः उनके प्रति मेरा व्यक्तिगत ऋण है। मुझे नहीं मालूम कि श्रील गुरु महाराज के शिष्य एवं अनेक विश्वभर के भक्तगण इस तथ्य से कहाँ तक अवगत हैं कि वे भी श्रीपाद भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज के प्रति किस सीमा तक ऋणी हैं। अतः यह आश्चर्यजनक सुअवसर है कि हम सब एकत्रित हों और आज के दिन कुछ अभिप्रशंसा का भाव प्रदर्शित करें।

श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज

आविर्भाव महामहोत्सव तिथि की जय।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

— २ —

मूल धारा

श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर देव गोस्वामी महाराज के आविर्भाव दिवस महोत्सव १६६१ की पूर्वसन्ध्या को श्रील चैतन्य सारस्वत मठ, नवद्वीप में प्रपूज्य चरण श्रीपाद भक्ति आनन्द सागर महाराज के दिये गये एक भाषण से।

श्रीगुरु एवं वैष्णवों की सेवा स्वयं साध्य है। उच्च वैष्णव के सुख को दृष्टि में रखे बिना, और वह वैष्णव श्रील गोविन्द महाराज हैं, इस लीला अथवा उस लीला, इस रास अथवा उस रास पर विचार की आवश्यकता नहीं है। श्रील गुरु महाराज—श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर देव गोस्वामी जी महाराज ने उन्हें चुना, अतएव मैं सदैव सोचता हूँ कि सम्पूर्ण धरती पर वे एकमात्र व्यक्ति हैं जो कृष्ण चेतना प्रदान कर सकते हैं। यद्यपि हमें ज्ञात है कि रामानुज सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय आदि सम्प्रदाय हैं जिनमें अनेक सम्मान्य और श्रद्धास्पद वैष्णव हैं, तथा ऐसी बात कहकर उनका तिरस्कार करना हमारा उद्‌देश्य नहीं है। किन्तु एक बार जब श्रील स्वामी प्रभुपाद महाराज के परिचय के माध्यम से हमें सर्वोच्च सिद्धान्त की झांकी एवं प्रसाद प्राप्त हो गया है, हमें देखकर आश्चर्य होता है कि कुछ लोग संदेह कर रहे हैं तथा अनिश्चय में हैं, कुछ अब भी दार्शनिक चिन्तन में संलग्न हैं, कुछ शास्त्रानुलीन में —अब भी अनुसन्धान, अनुसन्धान, अनुसन्धान—निरत हैं किन्तु जब मूर्धन्य वैष्णव हमारे समक्ष खड़ा है, तो करना क्या है ?

श्रील गुरु महाराज ने श्रील गोविन्द महाराज की कीर्ति का गान स्वयं बड़े अद्‌भुत ढंग से किया है, और इस प्रकार हमें ऊपर से सुनना है। एक विशिष्ट धारा है जो बादल से नीचे धरती पर आती है, न कि धरती से ऊपर बादल की ओर जाती है। इसलिये हम ॐ विष्णुपाद

श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज का सान्निध्य पाने में बड़े भाग्यशाली हैं। वह पदवी, "देव गोस्वामी" भी उनकी पदवी है। यह एक ब्राह्मण पदवी है तथा यह श्रील भक्ति रक्षक श्रीधर देव गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज पर पूर्णतया लागू होती है।

यह मेरी व्यक्तिगत समझ, खोज तथा अनुभव है : यदि हम केवल ॐ विष्णुपाद श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द देव गोस्वामी महाराज की महिमा के सम्बन्ध में ही बोलने का प्रयास करें, हम पायेंगे कि प्रभुपाद का मिशन सहसा हमारे कन्धों पर आ गया है, और यही बात है जिसे मैं कहना चाहता हूँ। यदि इसे मैं श्रील महाराज की उपस्थिति में कहूँ, तो वे अपनी विनम्रतावश संभव है प्रसन्न न हों, किन्तु उनके हृदय की प्रसन्नता दूसरी वस्तु है।

कल श्रील महाराज ने "गोपीनाथ" भजन का कीर्तन किया तथा उसे सुनकर, मैं सोचता हूँ कहने के लिये मेरे पास और कुछ नहीं है। जब वे "गोपीनाथ" गाते हैं तो वहाँ गोपीनाथ हैं; जब श्रील महाराज "जय गुरु महाराज यति–राजेश्वर" गाते हैं तो वहाँ गुरु महाराज यति राजेश्वर (संन्यासी राजाओं के सम्राट) होते हैं। मैं जो कहना चाहता हूँ वह है : जब वे कीर्तन कर रहे हैं तो वहाँ *तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः* हैं। हम वहाँ जो पाते हैं वह तृणादपि सुनीचेन का विग्रह–तृणादपि सुनीचेन का मूर्त्तिमान स्वरूप होता है।

श्रीलगुरु महाराज के पास आने के आरंभ से ही उन्होंने हमें श्रील गोविन्द महाराज के यश का ही वर्णन किया। अपने ही व्यास पूजा के दिन, श्रील गोविन्द महाराज के संन्यास दिवस के पश्चात् श्रील गुरु महाराज ने कहा, "मैं पुनः एक बात कहना चाहता हूँ, *तदीयाना समर्चनम्,* यदि तुम मेरे प्रिय की सेवा करते हो तो वह मेरी सेवा से भी अधिक है।"

पार्वती देवी ने शम्भु से पूछा, "सर्वोच्च पूजा क्या है ?" उन्होंने

उत्तर दिया, *"आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्*—विष्णु की पूजा सर्वोपरि है।" चूंकि पार्वती शंभु की उपासक थीं, वे कुछ उदास हो गयीं, फिर भी शंभु स्वयं कह रहे हैं कि कोई उनसे भी ऊँचा है। तब उन्होंने कहा, *"तस्मात्परतरं देवि, तदीयानां समर्चनम्*—किन्तु विष्णु की पूजा से भी उच्चतर पूजा उनके भक्तों की पूजा है : वह स्वयं भगवान् की भक्ति से भी महत्तर है।" अपने वैष्णववाद में हमारे पास परम, परमतर तथा परमोपरम है। इस प्रकार श्रील गुरु महाराज ने कहना चाहा, "यदि तुम श्रील गोविन्द महाराज की सेवा करते हो तो मैं अधिक प्रसन्न होऊँगा।" इसे उन्होंने अनेक लोगों के समक्ष प्रकट किया।

दिन प्रतिदिन रोते चिल्लाते हुए अद्वैत प्रभु ने महाप्रभु से प्रार्थना की, "कृपया यहाँ आइये।" उनकी प्रार्थना क्या बद्धात्माओं को मुक्ति प्रदान करने मात्र के लिये—उन्हें ८४,००,००० कोटि योनियों के चक्र से छुटकारा दिलाने मात्र के लिये थी ? क्या वह केवल उसके लिये ही थी ? क्या वह मात्र इसके लिये थी कि वे ब्रह्म तक पहुँच जायें जहाँ से पुनः उतरकर यहाँ न आना पड़े ? नहीं वह इसलिये था कि वे प्रतिकूल वातावरण सहन करने में असमर्थ थे। उन्होंने प्रार्थना की "जब आप आकर स्वयं इसे नहीं करते, यह असंभव है।" तथा वह प्रार्थना अद्वैत आचार्य से आयी जो महाविष्णु के अवतार नहीं हैं अपितु महाविष्णु के उद्‌गम हैं।

इस परम्परा में मैं दृढ़ विश्वास से कह सकता हूँ कि श्रीचैतन्य सारस्वत मठ मूल धारा है तथा यह धारा किनारे—किनारे तक सर्वत्र जायेगी। यह हमारी अभिलाषा और प्रार्थना है कि हर प्रकार की हर शक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभु के इस मिशन तथा श्रील आचार्य देव की सेवा में संलग्न रहे—तथा वही एकमात्र श्रेय, एकमात्र शुभ है।

आपको प्रामाणिक श्रौत—मार्ग में सच्चा आध्यात्मिक जीवन मिलेगा। सत्य कहना नितान्त आवश्यक है कि केवल श्रील आचार्य देव, जो श्रील गुरु महाराज द्वारा चुने गये हैं, वे कृष्ण चेतना प्रदान कर सकते हैं। आज के दिन, जिस दिन श्रील महाराज ने संन्यास लिया, यह मेरी अनन्य प्रार्थना तथा विनती है।

पूर्वकाल में श्रील महाराज ने अपना गृहस्थ वेष (अपना गृहस्थ का वस्त्र) प्रदर्शित किया तथा वे हरेक के प्रति विन्रम थे, किन्तु हम विदेशी तथा संन्यासी के रूप में आये तथा सच्चे स्वरूप को समझ नहीं सके। यद्यपि जब उन्होंने अपना आचार्य रूप दिखलाया तब हमारी समझ में अवश्य आया। श्रीलगुरु महाराज ने श्रील गोविन्द महाराज को चुना और अब वे सारे संसार में उसी प्रकार जायेंगे जैसे श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद गये, किन्तु यह दूसरी किश्त होगी।

श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद ने भूमिका दी—केवल भूमिका—परन्तु वे शक्त्यावेश अवतार थे। अन्य कोई भूमिका दे ही नहीं सकता था पर वह केवल आरम्भ था। भूमिका में आप पहला अध्याय, दूसरा अध्याय, ...अट्ठारहवां अध्याय—सब कुछ उल्लिखित पायेंगे, पर अब आरम्भ करें। उस भूमिका को, आदि से अन्त तक, श्रील गुरु महाराज द्वारा जीवन प्रदान किया गया, और अब दूसरा कदम आवश्यक है तथा वह हमारे आचार्य देव, श्रील गोविन्द देव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदान किया जा रहा है। यदि हमने भूमिका पढ़ ली है तो हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हमारे पास सब कुछ हो गया है। यह सोचना एक बीमारी है कि "मेरे पास सब कुछ है।"

जिस दिन श्रील गुरु महाराज ने श्रील गोविन्द महाराज को संन्यास प्रदान किया वह उनका अपना आविर्भाव दिवस था तथा उस दिन वे बहुत प्रसन्न थे। उस दिन प्रातः मैं उनसे मिलने गया और कहा—, "श्रील गुरु महाराज, कल आपने श्रील गुरु महाराज को संन्यास प्रदान किया; किन्तु मैं सोचता हूँ कि उन्होंने कई जन्मों पूर्व ही संन्यास ले लिया था।"

उन्होंने उत्तर दिया, "ओह, आप कहना चाहते हैं कि यह केवल लोगों को यह दिखाने के लिये किया जा रहा है कि वह क्या हैं, पर वास्तव में वे उससे कहीं अधिक हैं ?" श्रील गुरु महाराज मुस्करा और हंस रहे थे, और उस प्रातः जब उनका अपना आविर्भाव दिवस था, वे अपनी कुर्सी पर बैठे और कोई दो—तीन घण्टे तक वे श्रील गोविन्द महाराज के विषय में बात करते रहे। यह गुरु का आविर्भाव दिवस था

पर गुरु शिष्य का कीर्तन कर रहे थे।

मैंने एक लेख में लिखा कि श्रील गोविन्द महाराज के लिये प्रणाम *मन्त्रम् गुर्वाभीष्ट–सुपूरकम् गुरुगणैराशीष–संभूषितम्*..........................की रचना और निर्देशन श्रील गुरु महाराज द्वारा किया गया था। श्रील गुरु महाराज ने श्रील गोविन्द को बँगाली में निर्देश दिया : "इसको मन्त्रम् की अन्तर्वस्तु के रूप में रखो तथा शब्द योजना को इस इस प्रकार से सजाओ।" किन्तु किसी ने आपत्ति की, "वह गुरु महाराज द्वारा विरचित नहीं था, वह गोविन्द महाराज द्वारा विरचित था।"

गलत ! रचयिता वह है जो विचार देता है–भाषा अन्य वस्तु है। मन्त्रम् की रचना श्रील गुरु महाराज द्वारा की गयी, किन्तु हम लोगों को यह कैसे कह सकते हैं कि गुरुदेव प्रणाम मन्त्रम् अपने शिष्य को बतला रहे हैं ? संसार ऐसी बात को नहीं समझ सकता, पर यहाँ श्रीचैतन्य सारस्वत मठ में हम ऐसा कह सकते हैं ! अतः अपने समक्ष प्रखर रूप में प्रस्तुत मूलधारा की परम्परा में हम उसके चरणकमलों में साष्टांग दण्डवत्–प्रणाम की सेवा निवेदित करते हैं जिसे श्रील गुरु महाराज द्वारा विलक्षण रूप में चुना गया है : प्रपूज्य चरण श्रील भक्ति सुन्दर देव गोस्वामी महाराज की जय। ॐ विष्णुपाद परमहंस–परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्ति सुन्दर गोविन्ददेव गोस्वामी महाराज की जय !

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

— ३ —

श्रील गुरु महाराज की दिव्य इच्छा और निर्देश

२ दिसम्बर १९८५

कथित श्रीमन् भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज (जिनका मैं श्री भक्ति रक्षक श्रीधरदेव गोस्वामी महाराज धर्मपिता हूँ, जो जाति से गौड़ीय वैष्णव ब्राह्मण हैं और जो व्यवसाय से श्रीचैतन्य सारस्वत मठ, पोस्ट एवं थाना नवद्वीप के ठाकुर विग्रहों के प्रचारक और पुजारी हैं)

कथित श्रीमन् भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज जो, अस्थायी रूप में अपना औपचारिक पद परिवर्तित करने के बावजूद मेरे द्वारा श्रीगोविन्द सुन्दर विद्यारंजन के रूप में नाम प्रदान किये गये तथा मान्य किये गये एवं मेरे द्वारा मठ की विभिन्न सेवाओं में संलग्न किये गये; तथा जिन्हें मैंने ६ नवम्बर १९८५ को संन्यास दीक्षा प्रदान की जब उनका पुनः श्रीभक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज के रूप में नामकरण किया और मान्यता प्रदान की; तथा चूंकि उन्होंने इस मठ के संगठन एवं विकास कार्यों में अथक रूप से तथा सर्वतोभावेन सहायता की है एवं कलकत्ता एवं हापानिया केन्द्रों आदि की स्थापना तथा विकास में सहयोग किया है, तथा चूंकि उन्होंने मठ की व्यवस्था आदि हेतु अनेक दानदाताओं को तैयार कर मुझ तक बहुत प्रोत्साहन प्रदान किया है, एवं उपरोक्त सभी कार्य वे अभी आज तक करते आ रहे हैं; और चूंकि उनकी प्रवृत्ति अभी भी स्वभावतया मठ और उसके निवासियों की सेवा करने की बनी हुयी है तथा वे सदैव श्रीमठ के प्रगतिशील विकास के लिये प्रयत्नशील हैं, और सबसे ऊपर वे मेरे एवं मेरे आध्यात्म गुरु दोनों द्वारा प्रतिपादित भक्ति के पूर्ण सर्वस्वीकृत सत्य के दर्शन में दृढ़ता से स्थापित रूप में उनकी सर्वसम्मति से मान्यता है तथा भलीभाँति सर्वविदित हैं—अतः मैं एतद्द्वारा उन्हें अपना उत्तराधिकारी सेवायत (उत्तराधिकारी अभिभावक-

दास) आचार्य एवं अध्यक्ष नियुक्त करता हूँ। पूर्वोक्त डीड (अभिलेख व पत्रों) के नियम–नियमावलियों के परिपालन में मेरे समस्त विधि सम्मत दावे, निर्देशकत्व तथा अधिकार उनके द्वारा स्वतः उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त कर लिये जायेंगे। मेरे समस्त मठादिकों में, वे एकमात्र आचार्य होंगे, दीक्षा आदि प्रदान करेंगे तथा सेवायत (अभिभावक-दास) एवं अध्यक्ष के रूप में मेरे स्थापित मन्दिरों, आश्रमों आदि के समस्त कार्यों का प्रबन्धन करेंगे। एतदद्वारा मैं अपने समस्त पौर्णात्व एवं पाश्चात्य स्त्री एवं पुरुष भक्तों–शिष्यों एवं दिव्यता को समर्पित सभी निष्ठावान आत्माओं को अपनी अन्तिम इच्छा एवं निर्देश प्रकट करता हूँ कि : वे उनका एकमात्र आचार्य एवं अध्यक्ष के रूप में आदर करें, एवं उनके प्रति निष्ठावान रहें तथा मठ के सेवाकार्यों में उनका सहयोग करें।

यदि कोई मेरे निर्देशों और इस अन्तिम इच्छा का पालन नहीं कर सकता, तो वह मेरे स्थापित मठों आदि से अपने को अलग करने के लिये बाध्य होगा।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

• भाग दो •

प्रपूज्यचरण श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज के प्रवचनों से संकलित

प्रथम प्रवचन

ज्ञान का अवतरण

इस संसार में हमारे अनेक जन्म हो चुके हैं तथा अनेक प्रतीक्षारत हैं किन्तु अभी तक हम जन्म और मृत्यु का कोई समाधान नहीं प्राप्त कर सके हैं।

चूंकि हमारे पास शक्ति है अतः हमें कुछ अवश्य करना चाहिए, अच्छा या बुरा। शक्ति हमारी आत्मा का बल है : संकल्प, भावना और विचार उसमें उपस्थित हैं, अतः हमें कुछ अवश्य करना चाहिये, किन्तु यदि हम गलत कार्य करते हैं, तो परिणाम भी अशुभ होगा, और यदि हम उचित करते हैं तो परिणाम शुभ होगा। अतः यह जानना आवश्यक है कि क्या अनुचित और क्या उचित है, और यह मानव शरीर मुख्य शरीर है, मुख्य जन्म जिसमें हम कोई समाधान प्राप्त कर सकते हैं। हमारे अनेक जन्म हो चुके हैं परन्तु वास्तव में इस प्रकार के साक्षात्कार का कोई अवसर नहीं था, यद्यपि अब हमारे पास कुछ अवसर है। यदि हम अच्छी संगत में हैं तो हम जान सकते हैं कि इस जीवन में तथा इसके अनन्तर भावी जन्मों में हमारे लिये क्या शुभ है, हम थोड़ा बहुत वह भी समझ सकेंगे कि हमने पूर्वजन्मों में क्या किया है–ये सारी बातें हम इस जन्म में जान सकते हैं। मानव शरीर प्राप्त करना बड़ा दुर्लभ है, किन्तु जीव की वास्तविक प्रगति के लिये वह परम आवश्यक है, और वह अवसर इस समय हमारे अपने हाथ में है।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः

(श्रीमद्भागवत ११.९.२९)

सारे धर्म मानव जन्म की महत्ता पर बल देते हैं हर धर्म में कुछ न कुछ उल्लेख है कि हम इस जन्म में अपने भविष्य का निर्धारण कर सकते हैं। हम भी इसे व्यक्त करते हैं, किन्तु हमारे लक्ष्य और उनके लक्ष्य में कुछ अन्तर है। अनेक लोग कहते हैं कि यदि आप शुभ कर्म करते हैं, शुभत्व आपको भविष्य में पुरस्कृत करने की प्रतीक्षा करेगा। किन्तु वैष्णववाद शाश्वत है : गोलोक वृन्दावन तक एक अविराम प्रवाह।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्—यदि आप वास्तव में कुछ शुभ करने का प्रयत्न करते हैं, तो वह एक शाश्वत परिणाम लायेगा। अब चूंकि हमें मानव शरीर मिला है, अतएव हमें अपने लक्ष्य के लिये जितना हो सके उतना कठिन संघर्ष करना है, तथा वैसा करने से हम अपने भौतिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा कर सकते हैं।

आहार निद्राभयमैथुनं च ।
सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम् ।।

(हितोपदेश)

पशु और मनुष्य के बीच कुछ अन्तर है तथा हमें अपनी बुद्धि द्वारा इसका अनुभव कर लेना चाहिए। किन्तु अनुभव हमें सब कुछ नहीं प्रदान कर सकता—कुछ शक्ति भी होनी चाहिए : मन की शक्ति, शाश्वत आत्मा आदि की शक्ति, और वह आती है गुरु एवं वैष्णवों से। हमें उनके साथ जुड़ना है जो उचित चेतना में साधना कर रहे हैं। उनके सान्निध्य में हमारी भक्ति परक शक्ति अधिकाधिक विकसित होगी। उसे ही साधु—संग, साधु पुरुष की संगत कहते हैं।

साधु संग कृष्ण नाम एइ मात्र चाइ ।
संसार जिनिते आर कोन वस्तु नाइ ।।

जहाँ कहीं हम जायें तथा जो भी साधना हम करें, एक विशेषज्ञ

की सहायता लेना सदा आवश्यक है, अन्यथा हम गलती कर सकते हैं। हमारे समक्ष बहुत सी वस्तुएँ हैं, किन्तु हमें हर वस्तु का उचित उपयोग करने के योग्य होना चाहिए। विद्युत संघटक अनेक हैं किन्तु एक कैसेट प्लेयर ध्वनि अंकित और उत्पन्न करने वाली मशीन, बनाने के लिये एक विशेषज्ञ ही उनका उचित उपयोग कर सकता है। इसी प्रकार सर्वत्र और हर परिस्थिति में हमें उस क्षेत्र के विशेषज्ञों की सहायता की अपेक्षा होती है—और हमारे उचित विकास के लिये यही मुख्य सिद्धान्त है। किन्तु हमें निश्चय करना है कि कौन विशेषज्ञ है कौन नहीं। वस्तुतः हम समझ नहीं सकते कि किसी के ज्ञान, भावना तथा अतीन्द्रिय सम्पत्ति आदि का स्वरूप क्या है, किन्तु हम केवल नित्यानन्द प्रभु और महाप्रभु की प्रार्थना कर सकते हैं कि उनकी कृपा से हमें साधु संग मिल सकता है। हमारी प्रार्थना की शुद्धता के अनुसार वे हमें उसको प्रदान कर सकते हैं।

हम कभी निराश तो कभी बड़े उत्साहित अनुभव कर सकते हैं। जब हम सम्पूर्ण जगत में महामंत्र का कीर्तन और भक्तों का नृत्य देखते हैं तो हम बड़े उत्साहित अनुभव करते हैं। किन्तु यदि हम देखते हैं कि उस कीर्तन और नाचने के पीछे कोई अनुचित भावना है—कि उन्हें मिला तो बहुत है पर वे उसका ठीक उपयोग नहीं कर सकते—हम निराश होते हैं। कभी एक भक्त एक बिन्दु पर जिसे हम सरल मानते हैं प्रश्न पर प्रश्न पूछ सकता है, तथा हमें आश्चर्य हो सकता है कि वह समझ क्यों नहीं पाता। किन्तु वह प्रश्न इसलिए पूछता है कि वह उसके लिये बहुत आसान नहीं है, और जब हम देखते हैं कि वह प्रश्नोत्तरों की पुनरावृत्ति के बाद भी क्यों नहीं समझ पाता तो हमें कभी कभी बड़ी निराशा होती है। श्रील गुरु महाराज तथा श्रील स्वामी महाराज की पुस्तकों में सर्वत्र हमारे लाभ के लिये परामर्श और वर्णन विद्यमान हैं, और यदि आप उसके सार को ग्रहण कर सकते हैं तथा उसे ठीक से समझ सकते हैं, तो आपको सब कुछ मिल जायेगा। उस सार को न पकड़ पाने का एकमात्र कारण हमारे अनुभवातीत ज्ञान की कमी है। हमारी कमी नहीं है, तथा हमारी आवश्यकता है एक विशेषज्ञ की सहायता लेना।

याह भागवत पढ़ वैष्णवेर स्थाने।
एकान्त आश्रय कर चैतन्य–चरणे।।

(चै. च. अन्त्य ५/१३१)

इस श्लोक का अर्थ है कि श्रीमद्‌भागवत को ठीक से समझने के लिये हमें उसे किसी ऐसे व्यक्ति से सुनना चाहिए जो भक्ति–सेवा में विधिवत स्थापित हो तथा हमें श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रति पूर्णरूपेण समर्पण करना होगा। श्रीचैतन्य चरितामृत में यह परामर्श क्यों दिया गया है ? बिन्दु यह है कि श्रीमद्‌भागवत में सब कुछ निहित है किन्तु हम उसे ग्रहण नहीं कर पाते, अतः हमारे लिये सत्–संग प्राप्त करना सदा आवश्यक है। हमें धन (कनक) नहीं चाहिए, हमें स्त्री (कामिनी) नहीं चाहिए, हमें ख्याति (प्रतिष्ठा) नहीं चाहिए। सम्पूर्ण संसार में प्राणीमात्र इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये दौड़ रहे हैं। एक बड़ा अयोग्य व्यक्ति भी जो संभवतः गउओं का चारा मात्र इकट्‌ठा करता है, भी इन वस्तुओं के लिये व्याकुल होता है। जब वह अपने घर जाता है, वह एक 'पिता' है–उसके एक पत्नी होती है और उससे कुछ सम्मान पाता है। अन्य लोगों से भले ही उसे सम्मान न मिले, पर अपने परिवार में उसे आदर मिलता ही है। उसके पास धन भी है। उसके पास अन्य लोगों जितना भले न हो, पर वह अपनी १० रुपये प्रतिदिन की मजदूरी का आनन्द लेने का प्रयास करता है। इसी प्रकार सर्वत्र और हर जीवन में कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा किसी न किसी मात्रा में उपलब्ध होते हैं। पर वह वास्तव में हमारे जीवन का ध्येय नहीं है। जीवन का लक्ष्य भावातीत ज्ञान प्राप्त करना होना चाहिए। भावातीत ज्ञान द्वारा हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकते हैं।

श्रील प्रभुपाद भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर–श्रील गुरु महाराज के गुरुदेव–अपने अनेक भक्तों को अपने निजी मठों, संस्थाओं, मन्दिरों की व्यवस्था करते एवं विभिन्न भवनों आदि के निर्माण कार्य देख प्रसन्न थे। पर उन्होंने कुछ चेतावनी भी दी, "हम इस जगत में स्टोर कीपर, बढ़ई एवं भवन निर्माता आदि बनने नहीं आये हैं। वास्तव में हमारा धर्म श्रीगुरु एवं वैष्णवों की सेवा करना है : यह हमारा मुख्य कर्तव्य है तथा

हम संस्थाओं, भवनों आदि के विस्तार में लगे हैं, क्योंकि हम अन्य जीवों अन्य आत्माओं को आकर्षित करना चाहते हैं।''

यदि भक्त मठ में नहीं ठहरेंगे तो इतनी सारी ईंटों का क्या लाभ है? यदि भक्त अपने सेवा कार्यों से प्रसन्न नहीं रहेंगे तो हम इन सारी नौकरियों का क्या करेंगे ? अतः बद्धात्माओं के लिये यह बहुत आवश्यक है कि वे ऐसे सन्त का सान्निध्य प्राप्त करें जो उनके मन को अतीन्द्रियरूप से निर्दिष्ट कर सके। हमें उस विशिष्ट सान्निध्य की खोज करनी होगी।

हमारे सम्प्रदाय में यह सदा स्पष्ट नहीं होता कि बड़े–बड़े आचार्यों तक में से अनेक के गुरु कौन हैं ? रूप गोस्वामी के गुरु कौन थे ? रघुनाथ दास गोस्वामी, गोपाल भट्ट गोस्वामी, प्रबोधानन्द सरस्वती आदि के गुरु कौन थे ? यह ज्ञात है किन्तु यह शास्त्रों में सदैव तत्काल स्पष्ट नहीं है; ऐसा इसलिये कि हमारी गुरु परम्परा शिक्षा गुरुओं की लाइन से आती है। इसीलिए कभी–कभी मन्त्र–गुरु तो बहुत कम ज्ञात होता है तथा यहाँ तक हो सकता है कि एक महान आचार्य के मन्त्र–गुरु का नाम तक शास्त्रों में कहीं न लिखा गया हो। बलदेव विद्याभूषण का मन्त्र–गुरु कौन है ?

सामान्यतया यह ज्ञात नहीं है पर शास्त्रों के आलोड़न द्वारा उसे खोजा जा सकता है। फिर भी हम स्पष्ट देख सकते हैं कि बलदेव विद्याभूषण विश्वनाथ चक्रवर्ती का अनुगमन करते हैं तथा इसलिये माना जाता है कि विश्वनाथ चक्रवर्ती उनके गुरु हैं–यह शिक्षा गुरु की परम्परा है।

हमें ज्ञात न हो कि गौर किशोर दास बाबा जी महाराज का गुरु कौन है अथवा जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज का गुरु कौन है, किन्तु शिक्षा गुरुओं की परम्परा से हम देख सकते हैं कि बलदेव विद्याभूषण के पश्चात् जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज आते हैं।

जब हम एक पुल के किनारे सड़क की बत्तियों को जलते देखते हैं तो हम समझ सकते हैं कि एक विशिष्ट पथ से विद्युत–धारा प्रवाहित

हो रही है। इसी प्रकार सजीव कड़ी को देखना आवश्यक है।

हम एक या दूसरे पदार्थ के दास नहीं हैं अपितु हम अपने स्वामी के दास हैं। यदि वे कहेंगे, "यह बहुत अच्छा है," हम भी कहेंगे, "हाँ यह बहुत अच्छा है।" और यदि स्वामी कहेंगे, "वे वस्तुऐं अच्छी नहीं हैं," तो हम उन वस्तुओं से घृणा करेंगे।

दूसरे शब्दों में हम अपने स्वामी के दास हैं। जिसे वे अच्छा मानते हैं उसे हम भी अच्छा मानेंगे। श्रीनिवास आचार्य ने अपना स्वरूप इस प्रकार दर्शाया और हम इसे अन्य सभी महान भक्तों में देख सकते हैं।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः— उपनिषदों में कहा गया है कि अतीन्द्रिय ज्ञान का अर्थ है कि वह उच्च धरातल से नीचे अवतरित होता है। वह ज्ञान मेरा दास नहीं है। मैं उसकी पूजा करूँगा, मुझे उसकी आवश्यकता है, तथा जहाँ कहीं उसके मिलने की संभावना है, मैं वहाँ जाऊँगा। वह प्राप्त केवल उस व्यक्ति से होगा जो उस लाइन का मास्टर है, और यदि ऐसा गुरु मेरी सेवा से संतुष्ट है तो वह उक्त अनुभवातीत ज्ञान मुझे दे सकता है। उसे प्राप्त करने का मेरे पास अन्य कोई उपाय नहीं है।

भक्ति विनोद ठाकुर के जैव धर्म में एक वर्णन है कि किस प्रकार एक मायावादी संन्यासी ने भक्तों के प्रति दास्य—भाव विकसित कर लिया। वह प्रेमदास बाबाजी महाराज के पास आया और अनेक प्रश्न पूछे, तथा उत्तरों को सुनकर वह समझ गया कि बाबा जी की सम्पदा सचमुच अलौकिक है। वह बड़ा विद्वान् था और सोचा, "मैं शिक्षित हूँ और अनेक क्षेत्रों में मेरा बड़ा ज्ञान है किन्तु उस कोटि का ज्ञान मेरे पास बिल्कुल नहीं है।" तब उसने प्रेमदास बाबाजी महाराज के समक्ष समर्पण कर दिया जिन्होंने अपने आश्रम में रहने के लिये उसे आमंत्रित किया। संन्यासी ने उनकी शिक्षाओं का अनुसरण किया तथा शनैः शनैः उसे अतीन्द्रिय ज्ञान भी प्राप्त हो गया।

बिल्व मंगल ठाकुर मायावाद क्षेत्र—शंकराचार्य की शिक्षाओंके महान विद्वान् थे। किन्तु वे वैष्णवों की सेवा—परम्परा में आ गये और कृष्ण की

कृपा प्राप्त कर ली। बिल्व मंगल ठाकुर ने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि सब कुछ न केवल बाह्य रूप से अपितु आन्तरिक रूप से भी परिवर्तित हो गया है। सब कुछ–इच्छा, क्रिया, ज्ञान–पूर्णरूपेण बदल गया है। निम्नलिखित श्लोक उनके द्वारा रचित है :

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वानन्दसिंहासनलब्धदीक्षाः
हठेनकेनापि वयं शठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन

"मैं अद्वैत मार्ग का पारंगत था : अपने पूर्ण ज्ञान के बल पर मैं सदैव सम्मान के पद पर रहा, किन्तु एक गोपालक बालक आया और मुझे उस सिंहासन से उठा ले गया और अपना दास बना लिया–गोपीभाव का दास : *दासीकृता गोपवधूविटेन।*"

वस्तुतः समस्त जीव नारी रूप है। वे शक्ति, जीवशक्ति हैं। शक्ति का रूप सेवा है तथा सेवा का सर्वोच्च रूप (सखी) गोपी रूप है। वह भाव हमें केवल ध्यान से नहीं मिल सकता अपितु तब मिलेगा जब वह ज्ञान स्वयं हमारे हृदयों में अवतरित हो जाये। उस समय सब कुछ रूपान्तरित हो जायेगा।

एक उदाहरण है जिसे मैं सुनाना चाहता हूँ : एक दिन जब गौर किशोरदास बाबाजी सड़क के सहारे टहल रहे थे, कुछ छोटे लड़कों ने उन्हें पागल समझकर उनके ऊपर पत्थर फेंका। किन्तु बाबा जी महाराज ने कृष्ण से यह कहते हुए प्रतिक्रिया व्यक्त की, "ओह, कृष्ण, आप क्या कर रहे हैं ? आप मुझे बहुत परेशान कर रहे हैं, अतः मैं माँ यशोदा के पास जाऊँगा और इस घटना के विषय में उन्हें बताऊँगा। वह तुम्हें डाटेंगी और तुम उनकी डांट पर गौर करोगे।" गौर किशोर दास बाबा जी ने सोचा ही नहीं कि बच्चे पत्थर फेंक रहे हैं, उनका भाव बिल्कुल अलग थाः उन्होंने सोचा, "यह सब कृष्ण स्वयं कर रहे हैं न कि वे बच्चे।" इस प्रकार जब कृष्ण चेतना से संपृक्त हो जाते हैं तो हमारे भीतर एक आमूलचूल परिवर्तन आ जायेगा, किन्तु वर्तमान समय में हम ठीक से हरिनाम नहीं जप सकते। क्यों ? क्योंकि हमारे भीतर

अभिमान, अहंकार है। जब अहंकार का वह पर्दा हट जायेगा तो हम अपने सच्चे स्वरूप को प्राप्त कर लेंगे तथा हर वस्तु को उचित ढंग से देखने में समर्थ होंगे। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने कहा, *कृष्ण नाम धर कत बल, हृदय हयते बल जिह्वार अग्रते चले शब्द रूपे नाचे अनुक्षण।*

इसी प्रकार भक्ति रसामृत सिन्धु में हम देखते हैं :

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।

(भक्तिरसामृतसिन्धु १.२.२३४)

"वे मेरे हृदय में नाचेंगे और मेरी जिह्वा पर नृत्य करेंगे—वही सच्चा कृष्ण नाम है।"

एक उच्चतर अवस्था भी संभव है, जिसका कुछ सार सनातन गोस्वामी द्वारा प्रदान किया गया है। सामान्यतया हम उस आध्यात्म जगत् के वासियों से घुलना—मिलना चाहते हैं, किन्तु सनातन गोस्वामी ऐसी वस्तुऐं नहीं चाहते; उनके विचार का धरातल बिल्कुल दूसरा है।

अपने आरंभिक दिनों में सनातन गोस्वामी ने अपनी संतुष्टि हेतु महाप्रभु से अनेक बार प्रश्न किये। किन्तु एक हंसी के भाव में महाप्रभु उनके प्रश्नों को टाल देते। सनातन गोस्वामी सीधे पूछते, "क्या कलियुग में कृष्ण का कोई अवतार हैं ?" तथा एक क्रीड़ा के रूप में महाप्रभु उनको उत्तर देते, "ओ सनातन तुम बड़े नटखट हो.......," तथा उत्तर को टाल जाते।

बाद में, जब वृन्दावन में, रूप गोस्वामी अपने गुरु सनातन गोस्वामी को कुछ मीठा चावल भेंट करना चाहते थे तो उन्होंने सोचा, "मेरे गुरुदेव को मीठा चावल पसन्द है। यदि मैं कुछ दूध, शक्कर, किशमिश बादाम आदि इकट्ठा कर सकूँ तो खीर बना सकूँगा और उसे कृष्ण को अर्पित कर फिर अपने गुरुदेव को प्रस्तुत करूँगा।" थोड़ी देर बाद एक छोटी लड़की, संभवतः बारह चौदह वर्ष की, नन्दग्राम के निकट कदम खण्डी स्थित रूप गोस्वामी के भजन कुटीर में आयी। उसने कहा कि

वह अपने अभिभावकों और गाँव वालों के कहने पर आयी है। उसने कहा कि उन्होंने उसे कुछ पदार्थ दिये हैं और कहा है कि कृष्ण को भोग लगाने हेतु खीर बनाने के लिये वह सब रूप गोस्वामी के पास पहुँचा दे।

रूप गोस्वामी चकित थे। उन्होंने सोचा, "ठीक आज ही प्रातः मैंने इन वस्तुओं की इच्छा की और वे स्वतः आ गयी हैं। उन्होंने उन पदार्थों को सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा लगभग एक किलोमीटर चलकर तुरन्त नन्दग्राम में सनातन गोस्वामी के भजन कुटीर गये तथा उन्हें आमंत्रित किया, "प्रभो, आज आप मेरे भजन कुटीर आइये तथा कुछ प्रसाद ग्रहण कीजिये।"

सनातन गोस्वामी ने निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा रूप गोस्वामी ने खीर सहित विविध व्यंजन बड़ी सुन्दरता से बनाया।

सनातन गोस्वामी वहाँ दोपहर के लगभग आये तथा उन्होंने अनेक सुगन्धित एवं सुन्दर व्यंजनों को देखा। प्रसाद ग्रहण करते समय सनातन गोस्वामी ने सोचा, "मैं लगभग साठ साल का हो गया, पर इतने सुन्दर प्रकार के प्रसाद का आस्वादन कभी नहीं किया, मुझे आश्चर्य है कि यह किस प्रकार बनाया गया होगा।" वे हमारे श्रील गुरु महाराज की भाँति बड़े मेधावी थे, अतः तब उन्होंने रूप गोस्वामी से पूछा, "रूप तुमने इन व्यंजनों को किस प्रकार बनाया ? इसके पदार्थ भी बड़े महंगे तथा दुर्लभ हैं। ऐसे पदार्थ तुम कैसे इकट्ठा कर सके ?"

रूप गोस्वामी ने कहा, "आज प्रातः ही मैं सोच रहा था कि मैं आपको ऐसे विशेष प्रकार के मीठे चावल अर्पित करूँगा। उसी समय एक लड़की आयी और कहा कि वह पास के जावट गाँव से आयी है। उसने मुझे पदार्थ दिये और कहा कि उन्हें बनाकर कृष्ण को भोग लगा दूँ।"

सनातन गोस्वामी कुछ हैरान से रह गये क्योंकि वे वास्तव में व्रजधाम के प्रत्येक परिवार और हर परिवार के सभी सदस्यों को जानते थे।

सनातन गोस्वामी को हर कोई अपना पारिवारिक जज मानता था। यदि किसी परिवार में कोई झगड़ा होता तो वे उनसे परामर्श करते और उनके निर्णयों का पालन करते। इस प्रकार वे भलीभाँति विख्यात थे, विशेषकर नन्दग्राम, जावट, बरसाना आदि में। किसी स्थिति का उनका मूल्याकंन सदैव बहुत सही होता, तथा हर कोई उन्हें अपने परिवार के मालिक और निर्णायक के रूप में आदर देता। इस प्रकार सनातन गोस्वामी जावट के सभी लोगों को जानते थे, पर रूप गोस्वामी नहीं जानते थे।

सनातन ने रूप से पुनः पूछा कि वह लड़की किस परिवार से आयी थी, रूप गोस्वामी केवल इतना बता सके, "उसने मुझसे कहा कि वह जावट से आयी है, पर उसने कोई परिवार विशेष नहीं बतलाया।"

फिर सनातन गोस्वामी जावट गये और पूछ–ताछ की इतने सुन्दर पदार्थ किस परिवार से भेजे गये थे। यह जानकर कि उक्त पदार्थ उस गाँव के किसी घर से नहीं आये थे उन्होंने अन्ततः निर्णय किया कि वे श्रीमती राधारानी स्वयं थीं जिन्होंने पदार्थों को भेजकर रूप गोस्वामी की सेवा की थी। वे बड़े दुखी हुए और रूप गोस्वामी के पास पहुँचे, "आपने क्या किया है ? अपनी इच्छा पूरी करने की वासना पालना अच्छा नहीं है। मैंने पूरे जावट गाँव में पता लगाया किन्तु आज प्रातः जो कुछ लाया गया था वहाँ किसी के घर से नहीं आया था। मैं सौ प्रतिशत निश्चित हूँ कि श्रीमती राधारानी स्वयं आपके पास आयीं और इन वस्तुओं को लायीं, अन्यथा इस प्रकार के इतने विशिष्ट प्रसाद को बनाना असंभव है। आप के बनाये भोजन को मैंने पहले भी स्वीकार किया है और विविध प्रकार के प्रसाद का आस्वाद लिया है, पर इस बार आपने क्या किया है। आपकी इच्छा अच्छी नहीं है। हम जिसकी पूजा करना चाहते हैं, और पूजा करने हेतु हम सदा जिसकी खोज करते हैं, वह आयीं और हमारी सेवा की।" सनातन बड़े रुष्ट हुये और उन्होंने भजन कुटीर छोड़ दिया।

रूप गोस्वामी भी बड़े दुखी थे, "ओह, मेरे गुरुदेव संतुष्ट नहीं हुये। रूप गोस्वामी के सामने एक नौकर बैठा था तथा उसने उस

महान विरह और अवसाद को देखा जो रूप गोस्वामी के ऊपर आया। विरह के भाव में उनका दुःख इतना बड़ा था कि उनका शरीर बहुत उत्तप्त हो गया, साँस रुक गया और रोमांच हो गया। वह चेतना की बड़ी उदात्त अवस्था है, और वर्तमान के लिये हमें उसकी पूजा करनी है पर केवल दूर से। हम वहाँ जाना चाहते हैं और सेवा करना चाहते हैं। सेवा के अनेक विभिन्न धरातल हैं, और यदि हम अपने को उसके योग्य बनाते हैं, तो हमारे अपने रूप के भीतर ही उदात्त सेवा भाव स्वयमेव प्रकट होगा।

हमारे सामने ऐसी अनेक वस्तुयें हैं जो हमें सेवा से दूर खींचती हैं, किन्तु गुरु हमें बहुत अच्छा मिला है। अब बाल (गेंद) हमारे कोर्ट में है। हमारे पास सब कुछ है क्योंकि श्रील स्वामी महाराज एवं श्रील गुरु महाराज के माध्यम से हमें कृष्ण प्रेम का बीज प्राप्त है। बीज प्राप्त हो जाना ही बड़े सौभाग्य की बात है, और वास्तव में वह हमारे पास हैं; वहाँ धुंधलका नहीं है—वह सूर्य के प्रकाश से भी चमकीला है। अतः पूरी सजगता से हमें भावातीत ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। वह बीज हमारे हाथ में है और हम उसे उचित रूप से पोषित करने का प्रयत्न करेंगे।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

दूसरा प्रवचन

अर्पण

श्रीगुरु महाराज ने कई बार स्पष्ट किया कि धन नारायण के लिये, स्त्री कृष्ण के लिये, तथा कीर्ति गुरुदेव के लिये है। बँगाली में एक बड़ी सुन्दर उक्ति है : *गुरुगण शिरे पुनः शोभा पाय शत गुण* –जो कोरी ख्याति मुझे मिलती है, यदि मैं उसे तत्काल अपने गुरु के चरणकमलों की ओर स्थानान्तरित कर देता हूँ तो एक उदात्त और गौरव पूर्ण ढंग से वह चमकेगी और मैं भी उसकी किरणों के भीतर हूँगा। इसलिये हमें अपने को गुरुदेव को अर्पित करने का सदा प्रयास करना चाहिए; तथा गुरु का स्वभाव है कि वे उसे तत्काल अपने गुरु के चरणारविन्दों को प्रेषित कर देते हैं और इस प्रकार गुरु परम्परा से हर वस्तु बड़ी शीघ्रता से कृष्ण तक पहुँच जाती है।

संस्कृत तर्कशास्त्र में कहा जाता है : *शतपत्र वेधः–न्याय,* यदि सौ पत्रों के ढेर में से एक सुई बेधी जाती है तो निस्सन्देह सुई को सारी पत्तियों को एक–एक करके छेदना चाहिए, किन्तु प्रकटतया वह एक समय ऐसा करती है। सुई का हर एक पत्ती को बेधने का समय व्यावहारिक रूप से गणना योग्य नहीं है, पर उस समय में अन्तर तो है ही। इसी प्रकार हमें कुछ प्रसिद्धि या ऐसी कोई वस्तु मिलती है तो यदि हम उसे उचित रीति से अर्पित कर देते हैं तो व्यावहारिक रूप से वह तुरन्त गुरु परम्परा से कृष्ण तक पहुँच जायेगी। उचित स्थान है कि स्त्री कृष्ण के लिये, सम्पत्ति नारायण के लिये और यश गुरुदेव के लिये है। अन्तिम आर्य में गुरु राधारानी हैं और गुरु को ख्याति देने से वह तुरन्त *शतपत्र वेध–न्याय* से सीधे श्रीमती राधारानी के पास पहुँच जाती है। उस जगत् से आने वाला प्रकाश क्रमशः हमारा भी उद्धात्तीकरण करेगा।

तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः–यदि आप अपने माथे पर

तिलक लगाते हैं, तो आप तत्क्षण दर्पण में अपने उस तिलक की उपस्थिति देखेंगे। उसी प्रकार यदि आप सब कुछ अपने प्रिय भगवान् के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं तो वह तत्काल आपके पास लौट आयेगी और आप उन्नत अनुभव करेंगे। यह श्रीमद्भागवत में दिया गया बड़ा सुन्दर उदाहरण है।

अतएव हम अपने श्रीगुरुदेव को संतुष्ट करने का प्रयास करेंगे–यह एकमात्र मार्ग है। किन्तु गुरु को भी प्रामाणिक होना चाहिए, तथा उन्हें अपने गुरु को सदा प्रणाम निवेदन करना चाहिए। केवल एक प्रमुख योग्यता है : जो अपने गुरु के प्रति शत–प्रतिशत समर्पित है, वह गुरु हो सकता है। अन्य योग्यतायें गौण हैं, यथा जीवन में साधना की चौंसठ प्रकार की क्रियायें इत्यादि।

प्रहलाद महाराज ने कहा :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव–लक्षणा।
क्रियेत भगवत्यद्धातन्मन्येऽधीतमुत्तमम्।।

(श्रीभागवत ७.५.२३–२४)

इसका अर्थ है कि कृष्ण की सेवा–भक्ति के नौ प्रधान रूप हैं किन्तु समर्पण सर्वश्रेष्ठ है। समर्पण अथवा आत्म निवेदन से कोई व्यक्ति जो कुछ करता है वह अतिक्रम के रूप में सामने आयेगा। उदाहरण के लिये बगीचे में अनेक फूल हो सकते हैं किन्तु हमारे लिये उनका कोई विशेष मूल्य नहीं हो सकता। किन्तु यदि एक भी पुष्प भगवान के कर अथवा चरण कमल में रख दिया जाता है तो हम उस फूल को आदर के साथ अपने सिर पर धारण कर लेंगे। क्यों ? फूल एक सांसारिक वस्तु है कि जब हम उसे कृष्ण के चरणारविन्द में अर्पित कर देते हैं तो वह पूज्य रूप धारण कर लेता है।

यदि हम अपने को अपने गुरु को अर्पित कर दें तो वह हमें अपनी सुविधा के लिये नहीं रखेगा अपितु हमें कृष्ण के पास भेज देगा। हमारे

द्वारा अर्पित किसी शक्ति को वे अपने पास नहीं रखते अपितु वे उसे अपने गुरु के पास पूर्णरूपेण प्रेषित कर देते हैं और इसलिये *"शतपत्र वेध: न्याय"* से वह कृष्ण के पास पहुँच जाती है। वहाँ से दया एक दूसरे रूप में देने वाले के पास वापस लौट आती है और उसे भरपूर गौरवान्वित करती है। इस प्रकार दया ऊपर से नीचे अवतरित होती है और वह दया भावातीत ज्ञान है।

वास्तव में हम कृष्ण की पूजा किसी सांसारिक वस्तु से नहीं कर सकते। अतः जब हम श्रीविग्रह की पूजा करने जाते हैं तो मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। पुष्पों को अर्पित करने से पहले हम उन पर कुछ गंगाजल छिड़कते हैं और मन्त्रोच्चार करते हैं :

पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्प संभवे।
पुष्पचयावकीर्णे च हुं फट् स्वाहा।।

यह भी कि जब हम भगवान् की पूजा के लिये एक पात्र में जल लेते हैं तो जल को पवित्र करने हेतु हम एक दूसरा मन्त्र पढ़ते हैं।

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

इसी साधन से हम अपने को भी मन्त्र संयुक्त उपयुक्त साधन द्वारा रूपान्तरित करते हैं।

दिव्य श्रीहरिमन्दिराढ्यतिलकं
कण्ठं सुमालान्वितं
वक्षः श्रीहरिनामवर्णसुभगं
श्रीखण्डलिप्तं पुनः
पूतं सूक्ष्मं नवाम्बरं विमलतां
नित्यं वहन्ति तनुं
ध्यायेत् श्रीगुरुपादपद्म
निकटे सेवोत्सुकांचात्मनः

इसका अर्थ है : मैं अपने गुरु महाराज के दासों के दासों का दास हूँ। वे मुझ पर अपनी कृपा करें जिससे मैं उनके चरणारविन्दों की पूजा

कर सकूँ, और वे मेरी सम्पूर्ण शक्ति के साथ मुझे कृष्ण को अर्पित कर दें। यही सच्ची अर्चना का रूप है। वस्तुतः स्वयं अपनी शक्ति से हम कृष्ण को परितृप्त नहीं कर सकते। सत्ता अपने द्वारा और अपने लिये है—वे अपने से और अपने निज परिकर से सन्तुष्ट हैं। वे थोड़ा अभाव इस बात में अनुभव करते हैं कि उन्हें अपने दासों की सेवा हेतु सेवकों की आवश्यकता है। वे केवल इस आवश्यकता की पूर्ति के इच्छुक हैं।

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा।
किं देयमस्ति भवतो जगदीश्वराय।।
आभीरवामनयना हृतमानसाय।
दत्तं मनो यदुपते तदिदं गृहान्।।

भक्त कृष्ण को कुछ अर्पित करना चाहता है किन्तु वह कृष्ण को क्या अर्पण करेगा ? कृष्ण विष्णु भी हैं और विष्णु रत्नों के समुद्र में—*रत्नाकरस्तव गृहम्,* में निवास करते हैं।

भक्त सोचता है, "मैं कृष्ण को क्या दूँगा ? मेरे पास कुछ रत्न हैं जिन्हें मैं उनको दे सकता हूँ, पर ये उनके लिये पर्याप्त नहीं हैं। यह उन्हें तृप्त नहीं कर सकता क्योंकि वे ऐसे समुद्र में रह रहे हैं जहाँ अनेक रत्न हैं। सचमुच वे रत्नों के स्वामी हैं।

"रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा"—अतएव मैं कुछ अन्य प्रकार की सम्पत्ति देना चाहूँगा जैसे स्वर्ण, वस्त्र अथवा इस भौतिक जगत् की अन्य वस्तुऐं, जो यहाँ परिकर के पोषण आदि के लिये आवश्यक मानी जाती हैं, सम्पत्ति ही कहलाती हैं। किन्तु समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी लक्ष्मीदेवी हैं और वे उनके, भगवान् विष्णु के साथ रह रही हैं, अतः उनके पास भी सारी सम्पदा है।

उनके पास प्रभूत आभूषण हैं, सारी सम्पत्ति है यहाँ तक कि उनके पास संघनित दूध का सम्पूर्ण सागर है। अतः भक्त नहीं समझ सकता कि वह भगवान को कैसे सन्तुष्ट करे।

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा।
किं देयमस्ति भवतो जगदीश्वराय।।

"मैं आपको क्या दूँ ? आपके पास सब कुछ है।" तब भक्त के मन में आता है, "ओह, एक वस्तु ऐसी हो सकती है जो मेरे नियन्त्रण में नहीं है और वह है उनका मन। मेरे प्रभु का मन गोपियों द्वारा ले लिया गया है।" कृष्ण का मन सदैव गोपियों की सेवा की खोज करता है, इस प्रकार वास्तव में उन्होंने अपना मन खो दिया है: गोपियों ने उसे ले लिया। इसलिए भक्त कृष्ण से विनती करता है, "आपके पास मन नहीं है, वस्तुतः अतः आप कृपया मेरे मन को अपने चरणारविन्दों में स्वीकार कर लें, और उसका आनन्द लें।"

अपना मन कृष्ण का दे देना आवश्यक है, और उसे उनके चरणों में देकर हम गौरवान्वित होंगे। केवल यही आवश्यक है, परन्तु हम अपना दान करें किस प्रकार ? यद्यपि कृष्ण हमारे हृदय में निवास करते हैं, हम उन्हें देख नहीं सकते और उनके साथ प्रत्यक्षरूप से जुड़ नहीं पाते। हम उन्हें केवल "टेलिस्कोपिक पद्धति" से देख सकते हैं। आकाश में लाखों तारे हैं पर हम उन्हें देख नहीं सकते क्योंकि हमारी इतनी शक्ति नहीं है। अतएव देखने के लिये वह क्षमता प्राप्त करना आवश्यक है और वह प्राप्त होती है "टेलिस्कोपिक पद्धत्ति" द्वारा। जब उचित समायोजन द्वारा हम लेन्सों को एक के बाद एक रखते हैं, उस लेन्स पद्धत्ति से हम किसी बहुत दूर की वस्तु को देख सकते हैं। इसी प्रकार गुरु परम्परा कृष्ण को देख पाने का हमारा साधन है। यह भी गुरु परम्परा के माध्यम से ही है कि हमारी सेवा कृष्ण तक पहुँचती है और वह उनके द्वारा तुरन्त स्वीकार कर ली जाती है। यह तर्क संस्कृत ग्रन्थों में उल्लिखित है और इसे *"शतपत्र वेधः—न्याय"* कहा जाता है। हम सोचते हैं कि सेवा कृष्ण तक सीधे पहुँच जाती है किन्तु वह उन तक प्रत्येक क्रमागत गुरु के माध्यम से एक—एक करके पहुँचती है जैसे सुई पत्तियों के ढेर को बेधती चली जाती है। अपने आपको कृष्ण को अर्पित करना आवश्यक है किन्तु ऐसा करने का एकमात्र उपाय गुरु के माध्यम से ही है। तथा एक प्रामाणिक गुरु करने के लिये हमें अवश्य सावधान रहना चाहिए, अन्यथा सुई टूट जायेगी। शास्त्रों में हमें सच्चे गुरु के लक्षण प्राप्त होते हैं :

कृपा सिन्धुः सुसम्पूर्णः सर्वसत्त्वोपकारकः
निस्पृहः सर्वतः सिद्धः सर्वविद्याविशारदः
सर्वसंशय संच्छेत्ताऽनलसो गुरुराहृतः

(हरिभक्तिविलास १.४५–४६)

गुरु की यही योग्यता है और हम कृष्ण के साथ अपना सम्बन्ध उससे जुड़कर, उसके सानिध्य में रहकर प्राप्त कर सकते हैं जिसमें ये लक्षण घटित हों।

हम जो कुछ करें निष्ठा पूर्वक करें, और वह स्वयं हमारी सुरक्षा का ध्यान रखेगा। हमें निष्ठावान अवश्य होना चाहिए। भावातीत ज्ञान प्राप्त करने के लिये निष्ठा, विनम्र और सहनशीलता आवश्यक योग्यतायें हैं। पहला निष्ठा है। निष्ठा से हम सब कुछ पा सकते हैं किन्तु हमें वास्तव में निष्ठावान होना चाहिए अन्यथा फल नहीं मिलेगा। एक दृष्टान्त दिया गया है कि एक अच्छा हथियार बनाने के लिये अच्छे स्टील की आवश्यकता होती है उसी प्रकार सच्चा भक्त बनने के लिये वास्तविक निष्ठा आवश्यक है। निष्ठा भक्त का स्टील है। हमें पूरी निष्ठा के साथ अपना समर्पण करना चाहिए। हम विनम्रता, सहनशीलता एवं अन्य लोगों को आदर प्रदान करने के गुणों को भी धारण करने का प्रयास करेंगे।

हमें सदैव विनम्र होना चाहिए। माया भाँति भाँति से परीक्षा लेगी किन्तु हमें सब कुछ सहन करने और यह अनुभव करने का प्रयास करना चाहिए कि ऐसी बातें क्यों घटित हो रही हैं। पुनश्च, यदि हमें शान्तिपूर्वक रहना है तो हमें अन्य लोगों को मान देना होगा। यदि हम अन्य लोगों को विक्षुब्ध नहीं करेंगे अपितु उन्हें मान देंगे तो वे हमें भी क्षुब्ध नहीं करेंगे। वे सोचेंगे, "वह व्यक्ति बड़ा निर्दोष है। वह मेरे विरुद्ध नहीं है, पुनश्च वह मुझे सम्मान देकर मेरा पोषण करता है, अतः मुझे उसको विक्षुब्ध नहीं करना चाहिये।"

महाप्रभु सदैव चाहते हैं कि उनके भक्तों को आध्यात्मिक साधना हेतु शान्ति की आवश्यकता है। ऐसी शान्ति संभव है यदि भक्त विन्रम

और सहनशील हैं, और यदि वे दूसरों को मान देते हैं। भक्त सोचेगा, "मैं यह नहीं देखना चाहता कि कोई व्यक्ति सम्मान योग्य है अथवा नहीं, किन्तु मैं जानता हूँ कि मेरी अपनी स्थिति यह है कि मैं कृष्ण के दास–दासानुदास बनने का इच्छुक एक तुच्छ प्राणी हूँ। अतएव यदि कोई मुझसे आदर चाहता है तो मुझे उसे उसको तुरन्त देना चाहिये तथा उसे मुझको अपना शत्रु मानने का कोई अवसर नहीं देना चाहिए।"

ऐसा एक उदाहरण हम श्रील रूप गोस्वामी की लीलाओं में देख सकते हैं जिनके पास एक विश्वविख्यात दिग्विजयी पंडित पहुँचा। रूप गोस्वामी का नाम और प्रसिद्धि सुनकर वह उनके पास पहुँचा और चुनौती दीः "यदि आप मुझे पराजित नहीं कर सकते तो मुझे एक हस्ताक्षरित प्रमाण पत्र दीजिये कि आप मेरे द्वारा पराजित किये गये हैं।"

रूप गोस्वामी ने सोचा, "मेरे पास उस व्यक्ति से बात करने का समय नहीं है" इसलिये उन्होंने पूछा, "आपका पत्र कहाँ है? मैं उस पर हस्ताक्षर कर दूँगा।" तब उन्होंने लिखा, "यह व्यक्ति एक महान पंडित है और मैं इससे पराजित हो गया हूँ" तथा उन्होंने हस्ताक्षर कर दिये। शुद्ध भक्त का यही लक्षण है, वे दूसरों को विक्षेप अथवा कष्ट नहीं देना चाहते। वे भलीभाँति जानते हैं कि सब कुछ एक नष्ट हो जाने वाली झाँकी है। लोग सोचते हैं कि उनके पास जो है वह उनकी सम्पत्ति है, किन्तु हम नहीं जानते कि हमारी मृत्यु कब होगी और यह कि मरने के पश्चात् हम कहाँ जायेंगे। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने को कृष्ण की सेवा हेतु तैयार करें, और वही हमारे जीवन की वास्तविक सम्पदा है। हमारी एकमात्र शरण कृष्ण की सेवा है, अतएव हम अपना समय सांसारिक विषयों में नहीं गँवाना चाहते।

भक्तों का एक भाव तो यह है और दूसरा भाव है जिसे जीव गोस्वामी प्रभु ने दिखलाया है। वे उस दिग्विजयी पंडित की भूल सुधारना चाहते थे, इसलिये उसे ताड़ना दी : "आप रूप गोस्वामी से मिलने गये किन्तु आपको पता नहीं कि वे कौन हैं? आप अपने को बड़ा पंडित समझते हैं किन्तु अब मैं आपको एक बड़ा मूर्ख मानता हूँ।

आप आह्लाद के महासागर तक गये पर आप उस आह्लाद की एक बूँद भी नहीं पा सके। आप वहाँ तक जाकर भी खाली हाथ लौटे। अतएव मैं आपको एक बड़ा मूर्ख मानता हूँ। आपको पता ही नहीं कि रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी वस्तुतः हैं क्या, इसलिये आप उनको हराने चले गये। आपने उनके प्रति एक बड़ा अपराध किया है। मैं उनका शिष्य हूँ और यदि आप उनकी परीक्षा लेना चाहते हों तो आगे बढ़िये, जिससे आपको उनकी महानता थोड़ी बहुत समझ में आ जाये।'' किसी प्रकार उस दिग्विजयी पंडित को जीव गोस्वामी की कृपा प्राप्त हुयी और वह कुछ क्षणों में परास्त हो गया। वह समझ गया कि उसने रूप और सनातन के प्रति बड़ा अपराध किया है, तथा जीव गोस्वामी की दया से उसका अहं दूर हो गया। पंडित तत्काल रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी के पास गया और क्षमायाचना करते हुए उनकी शरण माँगी। जीव गोस्वामी प्रसन्न थे कि दिग्विजयी पंडित को भ्रम से उतारकर उन्होंने अपने गुरु की कुछ सेवा की है।

इस घटना के पश्चात्, हमें शिक्षा देने हेतु, रूप गोस्वामी ने जीव गोस्वामी के प्रति कुछ भिन्नता दिखलायी : ''तुम यहाँ वृन्दावन आये हो पर अब इस घटना से लगता है कि तुम सांसारिक ख्याति अर्जित करना चाहते हो।'' यद्यपि जीव गोस्वामी की यह इच्छा कदापि नहीं थी, उनका आशय अपने गुरु का यशवर्धन, दिग्विजयी पंडित की त्रुटि का सुधार और उन पर दया करना था । यह पाठ हमारे आचार्यों के जीवनों की अनेक घटनाओं में से एक का है।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः।।

तृतीय प्रवचन

सुरक्षित यात्रा

कल किसी ने पूछा, "हम कैसे मानें कि बलदेवविद्याभूषण विश्वनाथ चक्रवर्ती एवं रूप गोस्वामी की परम्परा में हैं?" वास्तव में वे पंडित वर्ग द्वारा निर्मित भ्रामक वातावरण से हमारे सम्प्रदाय के रक्षक हैं।

बलदेव विद्याभूषण ने जब गोविन्दभाष्य लिखना आरम्भ किया, तो सर्वप्रथम उन्होंने कृष्ण की वन्दना की, तत्पश्चात् जीव गोस्वामी की। उन्होंने पंडितों से सुरक्षा प्रदान करने के कारण जीव गोस्वामी को हमारा गुरु माना। बलदेव विद्याभूषण ने निम्नलिखित प्रणाम मन्त्र लिखा :

यः सांख्यपंकेन कुतर्कपांशुना
विवर्तगर्तेन च लुप्तदीधितम्।
शुद्धं व्यधात् वाक् सुधया महेश्वरं
कृष्णं स जीवः प्रभुरस्तु मे गतिः।।

यह एक बड़ा कठिन श्लोक है और मेरे लिये अंग्रेजी में इसकी व्याख्या कठिन है। मैं जो व्याख्या कर रहा हूँ वह शाब्दिक अनुवाद नहीं अपितु केवल भाव का वर्णन है। वे कहते हैं, "मैं श्रील जीव गोस्वामी के चरणारविन्दों में जो हमारे आध्यात्मिक जीवन के रक्षक हैं, अपना पूर्ण दण्डवत् निवेदित करता हूँ। वे सम्पूर्ण भ्रामक वातावरण से हमें बचाते हैं।

वे हमारी रक्षा सांख्य दर्शन से करते हैं। जिसकी तुलना वे रेतीले दलदल से करते हैं। जब जीव भौतिक अस्तित्व सागर से पार उतरना चाहते हैं, तो वे सबसे पहले रेतीले दल–दल में फँसते हैं। माया शास्त्र में, अन्तहीन शुष्क तर्कों की उपमा राख, कालिख और धुँये से दी गयी है जो हवा में उड़कर आंखों, आकाश और हमारे चतुर्दिक

छा जाते हैं जिससे हम देख ही नहीं पाते कि वास्तव में हमारे सामने है क्या ? कुतर्कों की हवा से सब कुछ आच्छादित हो जाता है और हम कृष्ण को नहीं देख पाते।

तत्पश्चात् वे विवर्तगर्तेन का उल्लेख करते हैं। विवर्तवाद शंकराचार्य का निर्विशेषवाद का दर्शन है जिसकी तुलना सड़क में गड्ढे से की जाती है।

आप कृष्ण के पास जाना चाहते हैं, पर जा नहीं सकते। क्यों ? क्योंकि मार्ग में तीन प्रकार की बाधायें हैं। प्रथम विक्षेप साख्य दर्शन से आता है जिसकी तुलना कीचड़ से की जाती है। न केव्ल आप उसे पार नहीं कर सकते अपितु वह उस कोटि का कीचड़ है जिससे आप रेतीले दलदल की भाँति अपने को छुड़ा नहीं सकते। दूसरा विक्षेप है कुतर्क का, अर्थात् न्याय-शास्त्र का जिसकी तुलना धुन्ध और धुयें से की जाती है। उस पर भी आप अपनी यात्रा में आगे बढ़ना चाहते हैं किन्तु सहसा सड़क पर अनेक गहरे गड्ढे निकल आते हैं। ये गड्ढे शंकराचार्य के विवर्तवाद की भाँति हैं। यह मायावाद है : *वेवर्तगर्तेन च लुप्त दीधितं*। मायावाद दर्शन आपका सड़क पर एक गड्ढे की भाँति प्रतीक्षा कर रहा है; यदि आप उस गड्ढे में गिर जाते हैं तो आप सदा के लिये समाप्त हो सकते हैं। उस गड्ढे में आपका शरीर खो जाता है, आपको कोई भोजन अथवा पोषाहार नहीं देता, वहाँ कुछ नहीं है और आप वहाँ मर जाते हैं। किन्तु बलदेव विद्याभूषण कहते हैं, *'शुद्धं व्यधात् वाक् सुधया महेश्वरं*–जीव गोस्वामी उस वातावरण से बचाने वाले हैं, और उन्होंने श्रीकृष्ण को उनके उदात्त रूप में दिखलाया है–*ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुलं श्यामसुन्दरम्*। मैं अपना सर्वस्व उन्हें अर्पित करता हूँ।'' अंग्रेजी में मेरे लिये उसकी व्याख्या कठिन है, पर यही विचार की सारणी है।

अतः जीव गोस्वामी हमारे रक्षक हैं तथा बलदेव विद्याभूषण उसी स्तर के एक पंडित हैं वे माध्व सम्प्रदाय में दीक्षित थे और बाद में जीव गोस्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का साहित्य पढ़ने के पश्चात् वे गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय–महाप्रभु के सम्प्रदाय के एक भक्त बन गये।

जयपुर में राजा के महल में राधा–गोविन्द एवं नारायण दोनों की पूजा होती है। परम्परा थी कि भक्तगण एवं जयपुर नरेश पहले राधागोविन्द और फिर नारायण की पूजा करेंगे। किन्तु एक दूसरा सम्प्रदाय था जिसने आपत्ति की और एक झगड़ा खड़ा किया। उन्होंने कहा, "पहले नारायण की पूजा होनी चाहिए और तब राधा गोविन्द की।" उन्होंने गौड़ीय–वैष्णवों को चुनौती दी : "यह देवता गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का देवता है इसलिये आपके सम्प्रदाय में जो भी योग्य गौड़ीय वैष्णव हो, उसे ले आओ; हम उससे शास्त्रार्थ करेंगे और हम उसे निश्चित ही पराजित करेंगे !" फिर सारे वैष्णव विश्वनाथ चक्रवर्ती के पास गये जो उस समय वृन्दावन में थे। वे बहुत वृद्ध थे और वहाँ जाने तथा शास्त्रार्थ में भाग लेने के अनिच्छुक थे। उन्होंने सोचा, "जयपुर में जो विरोध कर रहे हैं उनका तर्क बहुत खराब है पर उन्हें वह मालूम नहीं है।" पर कौन जाता ?

उस समय बलदेव विद्याभूषण विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के पास थे। विश्वनाथ चक्रवर्ती ने उनकी परीक्षा ली कि क्या वे नारायण की पूजा से पहले राधागोविन्द की पूजा के हमारे विचार की स्थापना कर सकते हैं। विश्वनाथ चक्रवर्ती बड़े सन्तुष्ट हुए और उन्हें इस गौड़ीय–वैष्णव सिद्धान्त की स्थापना हेतु सर्वोत्तम व्यक्ति माना। इसलिये उन्होंने बलदेव विद्याभूषण की प्रार्थना की, "कृपया जयपुर जाइये।"

उनका आशीर्वाद लेकर अकेले ही जयपुर राजा के दरबार में गये। उनका शरीर बहुत दुबला था, और उनके पास एक गौड़ीय–वैष्णव के समस्त लक्षण थे। वे अधिक वृद्ध नहीं थे किन्तु उस समय उनकी आयु कदाचित केवल तीस या चालीस की थी। उनकी आयु देखकर भक्त राजा पहले तो सन्तुष्ट नहीं हुए पर जब उनके देदीप्य मुख को देखा तो उन्होंने सोचा, "हाँ श्रेष्ठतर प्रतिनिधि सभी प्रौढ़ होंगे, पर उन्होंने इस तेजस्वी युवा भक्त को भेजा है अब हम उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे कि वह क्या कर पाता है।"

बलदेव विद्याभूषण ने तब रामानुज सम्प्रदाय की चुनौती का सामना किया। रामानुजी पंडितों ने उनसे अपना प्रथम प्रश्न पूछा :

"आप किसके भाष्य का पालन कर रहे हैं ?" भाष्य का अर्थ है व्याख्या। उस समय कोई सम्प्रदाय तभी मान्य होता था जब उसका वेदान्त पर भाष्य हो, उपनिषद पर भाष्य हो, विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र पर एक भाष्य हो तथा गीता पर भाष्य हो। अनेक स्थलों पर इस मापदण्ड का उल्लेख है कि एक सम्प्रदाय तभी मान्यता प्राप्त कर सकता है जब ये उपस्थित हों। गौड़ीय सम्प्रदाय में ऐसा कोई भाष्य नहीं था, इसलिये पंडितों ने कहा, "हम आपसे बात नहीं करेंगे क्योंकि आप किसी भाष्य का अनुगमन नहीं कर रहे हैं।"

बलदेव विद्याभूषण ने उत्तर दिया, " यदि आपसे बात करने के लिये इस प्रकार का भाष्य आवश्यक है तो मुझे सात दिन का समय दीजिये। सात दिन बाद मैं आपसे बात करूँगा, और उस समय मैं आपको सूचित करूँगा कि मैं किसका भाष्य मान रहा हूँ।"

उन्होंने उत्तर दिया, "ठीक है, सात या दस दिन लीजिये ।" अतः वे गोविन्द देव के पास गये जो श्रील रूप गोस्वामी के आराध्य थे, तथा अपने सम्प्रदाय के वैष्णवों का आशीर्वाद लेकर वे गोविन्ददेव के समक्ष विनत हुए और भाष्य की रचना के लिये, उनकी अनुमति ली।

सात दिन पश्चात् वे विरोधी पंडितों से मिले और उनके समक्ष प्रस्तुत किया : "मैं वेदान्त दर्शन के इस गोविन्द भाष्य का पालन कर रहा हूँ, यह हमारे सम्प्रदाय का है।"

"इसे किसने लिखा ?"

"मैंने स्वयं।"

शंकराचार्य और रामानुजाचार्य की भाँति उन्होंने अपने भाष्य की रचना की। उनके मुँह की ओर देखकर तथा उनसे बातकर, पंडित चकित रह गये : "उन्होंने केवल सात दिन में उसे लिख डाला। वे एक महान् पण्डित हैं।"

यह उन्हें स्पष्ट दर्शन कर कि कृष्ण परमात्मा के सर्वोच्च रूप हैं तथा यह कि नारायण कृष्ण से आ रहे हैं न कि कृष्ण नारायण से आ

रहे हैं, बलदेव विद्याभूषण ने उन्हें बड़ी आसानी से पराजित कर दिया। यह सिद्धान्त उन्होंने उस सभा में स्थापित किया तथा यह सिद्ध किया कि राधा–कृष्ण युगल हर एक के पूज्य हैं तथा वे परम परमात्मा हैं। पंडित बड़े प्रसन्न हुए और आज के दिन तक राधागोविन्द की पूजा के पश्चात नारायण की पूजा की यह परम्परा जयपुर में पालन की जाती है।

भाष्य लिखते समय उन्होंने कृष्ण को प्रणाम किया और फिर जीव गोस्वामी को। वहाँ यह श्लोक सम्मिलित है :

यः सांख्यपंकेन कुतर्कपांशुना
विवर्तगर्तेन च लुप्त दीधितिम्।
शुद्धं व्यधात् वाक् सुधया महेश्वरं
कृष्णं स जीवः प्रभुरस्तु मे गतिः।।

गुरु महाराज जब इस श्लोक की व्याख्या करते, उनका भाव और अभिव्यक्ति इस प्रकार परिवर्तित हो जाते कि उनका चेहरा देखकर, हम सोचते कि वे बिल्कुल जीव गोस्वामी की भाँति हो गये हैं। ऐसा लगता कि वस्तुतः जीवगोस्वामी ही हमारे समक्ष बैठे हों।

इस प्रकार गोविन्द भाष्य का यही इतिहास है और इसी प्रकार बलदेव विद्याभूषण ने अपने भाष्य लिखे। उसी समय से अल्पायु होते हुए भी, बलदेव विद्याभूषण गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में पूजे जाते रहे हैं। उनका योगदान हमारी सम्पत्ति है।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

चतुर्थ प्रवचन

समायोजन

भक्ति परक सेवा–व्रत में वैष्णव अपराध सबसे बड़ खतरा है। दूसरों की गतिविधियों को देखकर हमें उनके विषय में अवैष्णव होने का निर्णय लेने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। हम यहाँ तक देख सकते हैं कि दो भक्त एक बड़े क्रुद्ध भाव से लड़ सकते है। महाभारत में उल्लेख है कि जब युधिष्ठिर बहुत क्रोधित होते थे तो। अर्जुन को कभी–कभी अपमानित कर देते थे। ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने अर्जुन से बड़े क्रोधपूर्वक कहा, "तुम्हारे पास अपारशक्ति और अन्य लोगों से अतुलनीय अनेक दिव्य शस्त्रास्त्र हैं, पर तुम कर्ण को मार क्यों नहीं डालते ? फिर यदि तुम उसे मार नहीं सकते तो अपने गांडीव धनुष को लिये रहने की चिन्ता ही क्यों करते हो ? उसे फेंक दो।"

अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो उसके गांडीव का अपमान करेगा उसका वह वध कर देगा। अतः इन शब्दों को सुनने पर अर्जुन ने तत्काल अपना धनुष उठाया और युधिष्ठिर का सिर उनके शरीर से अलग करने हेतु उनके पास पहुँचा। कृष्ण वहाँ थे और कहा, "अर्जुन ऐसे मूर्ख मत बनो। तुम क्या कर रहे हो ?"

अर्जुन ने उत्तर दिया, "मैं ईर्ष्यावश ऐसा नहीं कर रहा हूँ, परन्तु यह मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि कोई मेरे गांडीव का अपमान करेगा, मैं उसका वध कर दूँगा। मैंने यह प्रतिज्ञा की है तथा मैं एक क्षत्रिय हूँ, अतः कोई भी क्यों न हो–यहाँ तक कि मेरी माँ अथवा पिता ही–मैं उसका वध अवश्य करूँगा। यही कारण है कि मैं युधिष्ठिर को मारने जा रहा हूँ।"

तब कृष्ण ने कहा, "और यदि तुम उन्हें नहीं मारते तो तुम क्या करोगे ? "मैं अपना ही शरीर त्याग दूँगा।"

यह सुनकर कृष्ण ने कहा, "तब अपना देह त्याग दो पर अपने भाई को मत मारो। यदि आवश्यक हो तो तुम मर जाओ, पर तुम अपने भाई को मारने क्यों जा रहे हो ? तुम मूर्ख हो, तुम नहीं जानते कि धर्म क्या है।"

अर्जुन ने विचार किया और तत्काल स्वीकार किया, "हाँ यह समाधान संभव है। मैं अवश्य मरूँगा। यदि मैं अपने भाई को मारता हूँ तो अनेक पापमय परिणाम सामने आयेंगे, अतः मुझे मरना ही चाहिए।" तब उन्होंने कृष्ण से कहा, "मैं मरूँगा।"

कृष्ण ने उत्तर दिया, "हाँ, अब तुम में समझ आ रही है। तुम वैसा कर सकते हो।"

तब अर्जुन ने पुनः अपना शस्त्र उठाया, इस बार स्वयं अपने को मारने हेतु। परन्तु कृष्ण ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा, "ओह, मुझे तुमको शिक्षा देने के लिये क्या–क्या करना होगा ? क्या एक जीवन में इतनी अधिक शिक्षा देना संभव होगा ?"

अर्जुन ने कहा "अब क्या समस्या हो सकती है ? हमने पहले ही निश्चित कर लिया है कि सर्वोत्तम समाधान क्या है, अतः मैं उसे करने जा रहा हूँ।"

"हाँ तुम मरो। किन्तु इस भौतिक धरातल पर आठ प्रकार की मृत्यु है, अतः तुम्हें समझ बूझ कर चुनना चाहिए।" तब कृष्ण ने सुझाव दिया, "मृत्यु के उन आठ प्रकारों में, एक है आत्म–श्लाघा। तुम उस रूप में मर सकते हो। दूसरे प्रकार की मृत्यु किसी को अपमानित करना है, अतः यदि तुम युधिष्ठिर को अपमानित करते हो तो यह उनकी मृत्यु होगी। अतः तुम अपने अस्त्रों का प्रयोग क्यों करते हो ? उसके स्थान पर अपनी वाणी का प्रयोग करो–वह भी एक अस्त्र है।"

तब अर्जुन ने युधिष्ठिर से युद्ध में अपनी गौरवशाली क्रियाओं का उल्लेख कर उत्साहपूर्वक अपना बखान आरंभ किया। साथ ही उसने युधिष्ठिर का भारी अपमान किया।" मैंने यह महान कार्य किया है, वह

महान कार्य किया है, पर आपने क्या किया है ? आप केवल अपनी कुर्सी पर बैठे–बैठे हमें आदेश देते रहे हैं। आप जानते तक नहीं कि रणभूमि है क्या.......।''

युधिष्ठिर को तब बड़ी पीड़ा हुयी और उन्होंने कहा, ''अब मैं जीवित नहीं रहूँगा। अब मुझे इतनी पीड़ा हो रही है कि मैं मर जाऊँगा।''

युधिष्ठिर को मूर्च्छित होते देख कृष्ण ने अर्जुन से कहा, ''अब जाओ और उनके पैर छूकर स्पष्ट करो कि जो कुछ तुमने किया वह क्यों किया। क्षमा माँगो और सब कुछ ठीक हो जायेगा।''

यह उचित सामंजस्य और समायोजन है। अतः यदि हम भक्तों को लड़ते–झगड़ते देखें तो हमें सदैव यही भाव अपनाना चाहिए। हम तत्काल नहीं कह सकते कि जो किसी एक दल में हैं वे भक्त नहीं हैं। सर्वप्रथम हमें यह सोचना चाहिए कि उपद्रव हुआ ही क्यों, तथा सारी परिस्थिति पर विचार करना चाहिए, केवल तब अपना कार्य सुनिश्चित करना चाहिये। वही हमारा कर्त्तव्य है।

• प्रश्न : क्या यह निश्चित है कि एक भक्त अपने दूसरे जीवन में एक भक्त के रूप में ही जन्म लेगा ?

• श्रील महाराज : श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं,

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्‌भावभावितः।।

(भगवद्‌गीता ८.६)

मृत्यु के समय हमारे संपूर्ण जीवन एवं पूर्व जन्मों की प्रवृत्तियाँ हमारे सामने आ जायेंगी और हमें जैसा स्मरण होगा वैसा शरीर प्राप्त होगा।

इस जीवन में यदि मैं कृष्ण चेतना में हूँ और मुझे दूसरा जन्म लेना है तो मेरा अगला जन्म कम से कम उतनी कृष्ण चेतना से संयुक्त होगा जितनी वर्तमान में वह मुझे प्राप्त है। एक बड़े उदात्त रूप में वह

मुझे प्राप्त होगी और मैं एक श्रेष्ठतर अवसर प्राप्त करूँगा।

कृष्ण कहते हैं :

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते

(भगवद्गीता ६.४१)

"जो इस जीवन में अपनी भक्तिगत साधना पूरी नहीं कर पाते वे मृत्यु के पश्चात् दूसरा शरीर प्राप्त करेंगे तथा उसके माध्यम से कृष्णचेतना की साधना का बेहतर अवसर प्राप्त करेंगे।"

दूसरी बात है कि हम एक अच्छे उच्चस्तरीय साधक को शरीर त्याग से पूर्व कुछ दिनों संज्ञाशून्य कोमा में देख सकते हैं, इसलिये प्रश्न उठ सकता है कि उसके लिये फल क्या होगा। पर कृष्ण अपने भक्त के संबंध में कहते हैं :

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति

(भग. ६.४०)

"कोई भक्त मृत्यु के समय मुझे स्मरण कर पाता है या नहीं, उसके लिये मापदण्ड नहीं है। यह नियम सामान्य साधकों के लिये है, पर जो मेरे प्रति पूर्णतया समर्पित है, वह कोमा में सात दिनों तक मूर्च्छित रहे अथवा नहीं, परन्तु मैं उसके प्रति उत्तरदायी हूँ। मैंने पहले ही उत्तरदायित्व ले रखा है अतः अपने लिये उसका कोई दायित्व नहीं है। उसके लिये जो शुभ है मैं करूँगा। मैं सोचता हूँ उसको दूसरा जन्म लेना अच्छा रहेगा, मैं उसे वह प्रदान करूँगा, अन्यथा मैं उसके लिये दूसरी स्थिति की व्यवस्था करूँगा।"

हम श्रील भक्ति विनोद ठाकुर की पुस्तकों में सब कुछ संक्षेप में देख सकते हैं। उन्होंने जैव धर्म, चैतन्य शिक्षामृतम् आदि अनेक पुस्तकें लिखी हैं। यदि हम केवल श्रील गुरु महाराज की पुस्तकों का अध्ययन और पालन करें तथा भक्ति विनोद ठाकुर के काव्यों का अवलोकन करें तो पर्याप्त रूप से देख सकेंगे। अनेक पुस्तकें पढ़ना आवश्यक नहीं है।

• प्रश्न : श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं कि एक असफल योगी एक कुलीन समृद्ध परिवार अथवा एक पवित्र ब्राह्मण परिवार में जन्म लेता है। मैं समझ सकता हूँ कि पवित्र ब्राह्मण परिवार उसके भावी विकास के लिये बहुत अनुकूल हो सकता है पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि एक धनी कुलीन परिवार उतना अच्छा नहीं होगा क्योंकि वह व्यक्ति भौतिक आत्म–श्लाघा में अधिक से अधिक उलझता चला जायेगा। कृपया इस बिन्दु की व्याख्या करें।

• श्रील महाराज : मैं जब भक्तों पर दृष्टि डालता हूँ जिन्होंने ऐसे परिवारों में जन्म लिया तो मैं उत्तर बड़ी शीघ्रता से समझ सकता हूँ। यदि कृष्ण की सेवा के लिये सुविधाओं का उपयोग किया जाये तो और अधिक उन्नति होगी। यदि कोई एक राज्य पा जाता है, और वह गुरु, वैष्णव और भगवान की सेवा उस पूरे राज्य से करता है, तो वह एक ब्राह्मण की अपेक्षा अधिक लाभ में रहेगा भले ही वह ब्राह्मण परिवार भौतिक रूप से अधिक पवित्र हो। यह भी कि पवित्र का अर्थ भक्तिमय होना नहीं है। भक्ति एक अन्य वस्तु है और जहाँ भी हम हैं हमें उसे प्राप्त करने के अवसर की खोज में रहना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता का उक्त निर्देश वस्तुतः सामान्य जनों के लिये है, भक्तों के लिये नहीं। भगवद्गीता में अनेक बातों का उल्लेख है : कर्म, भक्ति–मिश्र कर्म, योग–मिश्र कर्म, ज्ञान–मिश्र कर्म इत्यादि, किन्तु हम केवल वह भाग ग्रहण करेंगे जो हमारी शुद्ध भक्ति परम्परा के अनुकूल है। क्योंकि जो पूर्णरूपेण भक्ति में लीन है, उसका जन्म और मृत्यु कृष्ण पर निर्भर है। निःशेष समर्पित भक्तों का सम्पूर्ण दायित्व कृष्ण द्वारा लिया जाता है : उनका सारा शुभाशुभ भगवान का दायित्व है। वे जानते हैं कि किस प्रकार अपने भटके हुए सेवक को घर तक पहुँचायें। भगवान् अपने खोये हुये भक्त के प्रेमानुसंधान में लगे हैं। प्रेम आवश्यक है। मुख्य वस्तु है प्रेम। जहाँ प्रेम है वहाँ सब कुछ है पर उसे होना अनुभवातीत चाहिए अन्यथा सांसारिक "प्रेम" अधिकाधिक उपद्रव का हेतु बनेगा।

इस भौतिक जगत् में सबसे बुरी वस्तु परकीया प्रेम है, किन्तु

अनुभवातीत लोक में जहाँ सब कुछ श्रेष्ठ और सेवा के लिये है; सर्वोच्च स्थिति परकीया प्रेम की है। इससे हम समझना आरम्भ कर सकते हैं कि लौकिक और आध्यात्मिक संसारों के बीच कितना बड़ा अन्तर है।

कृष्ण जब वस्तुओं को चुराकर लेते हुए दिखलायी पड़ते हैं, तो उनके द्वारा अर्पित वस्तुओं के स्वीकार की अपेक्षा कहीं अधिक मधुर होता है। यह हमारे ऊपर लागू नहीं होता किन्तु हमें सूर्य अथवा कम से कम सूर्य के प्रकाश को अवश्य देखना होगा अन्यथा हम अन्धे रूप से आजीवन एक गुफा में पड़े रहेंगे। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इसे बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है और मैंने नाट्य मन्दिर के प्रवेश द्वार पर उसे संगमरमर में उत्कीर्ण किया है :

मातल हरिजन कीर्तन-रंगे
पूजल रागपथ गौरव भंगे

उन्होंने कहा, "दूर से हमें श्रीकृष्ण की लीलाओं की पूजा करनी है, तथा प्रार्थना करनी है कि भविष्य में वह वैष्णवों एवं गुरु की दया से हमारे ऊपर अवतरित हों।" हमें अपनी वर्तमान स्थिति समझनी है तथा चिन्ता और आदर के साथ, अपने दिव्य गन्तव्य की ओर अग्रसर होना है।

प्रथम प्राथमिकता गुरु एवं वैष्णवों की सेवा को देनी होगी। गुरु और वैष्णवों की सेवा द्वारा हम कृष्ण की सेवा प्राप्त करते हैं। श्रीमन् महाप्रभु का यह प्रधान विचार है। विभिन्न स्रोतों के अनेक श्लोकों से हम देख सकते हैं कि गुरु तथा वैष्णव की सेवा हमारे वर्तमान जीवन का लक्ष्य है, और उसके माध्यम से हम श्रीकृष्ण और श्रीमती राधारानी की प्रत्यक्ष सेवा प्राप्त कर सकते हैं। पर सदा ही हमारे रक्षक हमारे गुरु हैं—और मेरे गुरु के रक्षक उनके गुरु हैं; उनके रक्षक उनके गुरु हैं और इस प्रकार हमारी गुरु परम्परा श्रीमती राधारानी तक जाती है। कृष्ण गोलोक में सदैव उपस्थित हैं, इसलिये दास उनकी सेवा आनन्दपूर्वक कर रहे हैं। कृष्ण अपना दर्शन कहीं भी, किसी क्षण दे सकते हैं, और वे उनकी सेवा में, श्रीमती राधारानी के निर्देशन में, निरत होने के लिये व्याकुल हैं।

इस भौतिक जगत् में, यद्यपि, हमें केवल यह देखना है कि कृष्ण अपना प्राकट्य मेरे गुरु के रूप में करते हैं। और जब अधिक स्पष्टता हो जाये तो हम देख सकते हैं, "मेरे गुरु कृष्ण के एक दास हैं, तथा सर्वोच्च दास श्रीमती राधारानी हैं, अतएव मेरे गुरु उनकी (राधारानी) एक अभिव्यक्ति हैं। वह भावना की दूसरी अभिव्यक्ति मात्र नहीं है अपितु अस्तित्व–वह अनुभवातीत साक्षात्कार की दूसरी अवस्था है। किन्तु पहले हमें समर्पण के धरातल पर स्थापित होना चाहिए, तब हमको धीरे–धीरे कृष्ण की सेवा का अवसर मिलेगा। वह धीरे–धीरे आयेगा–वह शीघ्र आ सकता है अथवा उसमें अनेक जन्म लग सकते हैं–किन्तु वह जब भी आयेगा, वह क्रमशः ही आयेगा। मूल वस्तु है सेवा, पर हम उचित ढंग से सेवा नहीं कर पाते, इसलिये अपने को सच्ची सेवा के लिये तैयार करने हेतु साधना की आवश्यकता है।

इस समय हम शुद्ध सेवा नहीं कर सकते और कृष्ण के नाम का कीर्तन ठीक से नहीं कर सकते। उदाहरण के लिये हम गुरु, वैष्णव और शास्त्र से जानते हैं कि कृष्ण और कृष्ण–नाम एक ही हैं, फिर हम जब कृष्णनाम का कीर्तन करते हैं तो अपने हृदयों में स्वयं कृष्ण का परिणाम प्रकट होते क्यों नहीं देखते ? हमें इस बिन्दु पर विचार करना चाहिए। कृष्णनाम के सच्चे कीर्तन का फल है कि कृष्ण हृदय में प्रकट हों, पर कृष्ण हमारे हृदयों में प्रकट नहीं हो रहे हैं, इसलिये हम जानते हैं कि हम यथार्थ कृष्ण–नाम में निरत नहीं हो रहे हैं। अतएव अपनी वर्तमान स्थिति में हम साधना की अवस्था में हैं और यही सेवा के अन्य रूपों के लिये भी सत्य है।

यहाँ साधना करने से, हमारी आदत की शक्ति हमें अच्छी स्थिति में स्थापित कर देगी। यदि हम हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करते हैं, वह हरे कृष्ण मन्त्र हमारे भीतर प्रस्फुटित होगा। यदि हम सेवा कार्य का अभ्यास करते हैं, तो सोते समय भी हम सेवा के विषय में सोचेंगे।

परन्तु सेवा आवश्यक है और हरे कृष्ण हमें सेवा के लिये उत्साह प्रदान करता है। जब हम प्रत्यक्ष सेवा में हैं, तब कोई समस्या नहीं है, और वह मेरे गुरु के माध्यम से संभव है। गुरुदेव सारा दायित्व ले लेंगे,

और हमारा कर्त्तव्य केवल उनकी सेवा होगा, और वह हमारे लिये शुभ होगा। यदि वे कोई दायित्व सौपेंगे तो हमें उसको पूरा करना होगा—और वही हमारा कर्त्तव्य है। एक सरकार में हर कोई हर प्रकार का कार्य नहीं करता; किन्तु वह कुछ लोगों द्वारा कुछ कार्य तथा अन्य लोगों द्वारा अन्य कार्यों को करने से चलती है। हमारी चिन्ता भावातीत सरकार के प्रति है और हमें अपने को उस सरकार का अंश बनाना है। केवल यही मुख्य वस्तु है। कीर्तन निस्सन्देह आवश्यक है, किन्तु कीर्तन अपराध—रहित होना चाहिए अन्यथा हम मुख्य सम्पर्क से वंचित रहेंगे। निरपराध कीर्तन और सेवा धीरे—धीरे गुरु की कृपा से प्राप्त होगी। यदि हम वैष्णवों के प्रति अपराध नहीं करते तो वह शीघ्र प्राप्त होगी, अन्यथा उसमें देर होगी, और वह बाद में आयेगी, किन्तु हमारी एकमात्र आशा है कि हम एक दिन सफल अवश्य होंगे।

कृष्ण चेतना की साधना किये बिना, भौतिक धरातल से भावातीत धरातल तक उठने का कोई अन्य मार्ग नहीं है। इस भाव से हमें आगे बढ़ना है: "केवल यही मेरा कर्त्तव्य है—मैं करूँगा या मरूँगा।" पर हर कोई दृढ़तापूर्वक उस मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकता, उनके लिये अनेक विधियाँ हैं जिसके द्वारा उनकी स्थिति का सामंजस्य हो सकता है, किन्तु स्वामी, उनके गुरुदेव, वहाँ हैं और वे समझ सकते हैं कि शिष्य किस मार्ग से प्रगति कर सकते हैं और किससे नहीं। वे जानते हैं कि: वे विशेषज्ञ हैं, अतएव भावातीत परिणाम शिष्य को प्राप्त होगा। गुरुदेव का अर्थ है जो उस मार्ग में विशेषज्ञ हो।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

पंचम प्रवचन

वर्तमान स्थिति सर्वोत्तम संभावना

एक दिन जब युधिष्ठिर महाराज अपने भाइयों और पत्नी के साथ जंगल में थे, यमराज ने युधिष्ठिर के धर्म की शक्ति की परीक्षा लेनी चाही। एक श्वेत पक्षी का रूप धारण कर, यमराज एक कुण्ड पर ताजे जल के सरोवर पर रुके। पाण्डव प्यासे थे अतः एक–एक करके जल लाने के लिये वे उस सरोवर पर गये। सर्वप्रथम वहाँ भीमसेन आये। जब वे वहाँ आये तो पक्षी ने कहा, "पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो, तब तुम पानी ले सकते हो, अन्यथा तुम मर जाओगे।" पर भीमसेन ने पक्षी की चिन्ता नहीं की, उन्होंने पानी पी लिया और मर गये। तब अर्जुन, नकुल, सहदेव गये और हर एक का वही परिणाम रहा।

अन्ततः युधिष्ठिर महाराज वहाँ गये, और श्वेत पक्षी के रूप में यमराज ने उनसे कहा, "यदि तुमने मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना जल ग्रहण किया तो अपने भाइयों की भाँति मारे जाओगे।" अपने भाइयों को मृत देखकर युधिष्ठिर महाराज ने सोचा कि यह साधारण पक्षी नहीं हो सकता और यह कि वह सत्य बोल रहा है।

अतः वे सहमत हो गये, "हाँ मैं जल पीने से पहले तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा। किन्तु मेरे भाई बड़े बलवान और महान योद्धा हैं, वे सब क्यों मरे ?"

पक्षी ने उत्तर दिया, "यह मेरी शक्ति के द्वारा घटित हुआ है," और तब उसने अनेक प्रश्न किये जिनमें से चार विशेष रूप से विख्यात हैं।

का च वार्ता, किमाश्चर्यं कः पन्थाः कः सुखी

"समाचार क्या है ? आश्चर्य क्या है ? पथ क्या है ? तथा सुखी कौन है ?"

युधिष्ठिर महाराज ने सोचा :–"यह पक्षी साधारण पक्षी नहीं है, अतः ये प्रश्न साधारण नहीं हैं।" इस प्रश्न के उत्तर में कि "समाचार क्या है ?" वे कह सकते थे कि "हां मैं ठीक हूँ....." पर उसके स्थान पर उन्होंने कहा,

मासरत्तुदर्वी परिघट्टनेन सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
अस्मिन् महामोहमये कटाहे भूतानि कालः पचतीति वार्ता।।

"मास और ऋतुऐं दो मलछियों की भाँति हैं जिनसे पकाते समय भोजन चलाया जाता है; सूर्य ईंधन के समान है जिससे भोजन पकाया जाता है, महा मोह पकाने के पात्र की भाँति है, जीव मछलियों की भाँति है; तथा काल उन्हें भून रहा है। जीव माया के पात्र में सूर्य, दिन, रात, महीनों और ऋतुओं की सहायता से जो पकाने के लिये आवश्यक हैं, भूने पकाये जा रहे हैं। पकाने का कार्य काल कर रहा है, जिसका अर्थ यहाँ यमराज भी है। यह वही है जो हमें यहाँ इस भौतिक जगत् में तल–भून रहा है। यही समाचार है।"

इस प्रश्न कि, "आश्चर्य, चमत्कार क्या है ? " युधिष्ठिर महाराज ने उत्तर दिया,

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषास्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतःपरम्।।

"इस जगत में सारे मनुष्य और समस्त जीव विगत होते जा रहे हैं। हरेक के पिता, माता, यहाँ तक कि कभी–कभी अल्पवयस्क लोग भी पहले ही दिवंगत हो जाते हैं–पर हर कोई सोच रहा है कि वह स्वयं नहीं मरेगा। वे अपने लिये मकान बना रहे हैं, धन, भोजन आदि संग्रह कर रहे हैं। वे सोचते हैं कि वे एक लम्बे काल के लिये जीवित रहेंगे, पर यह सब एक चलायमान दृश्य है। सब कुछ वृद्ध अथवा युवा, ठीक उनकी आँखों के सामने मरीचिका की भाँति जा रहे हैं। यह गच्छति जगत्–दिनोंदिन व्यतीतमान है, पर हर कोई सोचता है कि वह एक

लम्बे समय तक, यदि चिरकाल तक नहीं, तो कोई ८० अथवा ६० वर्ष तक जीवित रहेगा। और किसी के पास समय नहीं है, पर उनके पास समय है। यही चमत्कार है। इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है? मैं इसे सबसे बड़ा चमत्कार मानता हूँ।"

तीसरे प्रश्न कि, "पथ क्या है," के उत्तर में युधिष्ठिर महाराज ने कहा,

वेदा विभिन्ना मुनयो विभिन्ना
नासौ ऋषिर्यस्य मतं न भिन्नम्
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः सः पन्थाः।

"हम देखते हैं कि वेद अनेक हैं, ऋषि अनेक हैं, अतः यह समझ पाना कठिन है कि हम किस पथ का अनुसरण करें। हर ऋषि के विचार अलग हैं और विभिन्न वेद भिन्न व्याख्यायें तथा निर्देश देते हैं। अतः हम किसका अनुगमन करें ?"

जो ऋग्वेद में है वह सामवेद में नहीं है, जो सामवेद में लिखा है वह यथावत् अथर्ववेद और यजुर्वेद में नहीं मिलता; और जो वेदान्त में दिया गया है वह उसी प्रकार अन्य शास्त्रों में उल्लिखित नहीं है; अतः हम किसका पालन करें ? ऋषि भी भिन्न भिन्न मत प्रकट करते हैं। इस जगत् के अनेक ऋषि, अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अगस्त्य, व्यासदेव तथा अन्य अनेक ऋषि विभिन्न मत प्रतिपादित करते हैं। अतएव हम किसका पालन करें ? इसलिये युधिष्ठिर महाराज ने कहा, "वेदों का पालन करना आवश्यक नहीं है, ऋषियों का पालन आवश्यक नहीं है। वास्तव में मैं देखता हूँ कि धर्म का तत्त्व अज्ञात और गोपनीय है, और अनुगमन के लिये हमारे पास एकमात्र मार्ग पूर्ण महाजन–दिव्य जगत के पूर्णदास का मार्ग है। वह जो कुछ करता है, हम भी उसे करेंगे, और हम ऋषि अथवा वेद का अनुसरण नहीं करेंगे। अनेक ऋषि एवं शास्त्र हैं : कुछ ज्ञान योग की संस्तुति करते हैं, कुछ कर्मयोग, भक्ति–मिश्रकर्म, ज्ञान–मिश्र कर्म, यज्ञ–मिश्र कर्म आदि की। अतः उनका अनुगमन आवश्यक नहीं है, अपितु हमें उसका अनुसरण करना चाहिए जो

भावातीत लोक का दास है। भावातीत लोक को जाने का यही मार्ग है।''

फिर चार मुख्य प्रश्नों में अन्तिम प्रश्न कि ''सुखी कौन है'' के उत्तर में युधिष्ठिर महाराज ने कहा,

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो नरः
अऋणी अप्रवासी च स वारिचर मोदते

''जो किसी का ऋणी नहीं है, सुखी है। उसके धन हो या न हो, पर किसी न किसी प्रकार वह कुछ न कुछ पकाता है, उसे तैयार करता है, तथा उसे भगवान् को भोग लगाता है। सूर्यास्त के पश्चात् वह उन अवशेषों को ग्रहण करता है तथा स्वच्छ अन्तःकरण के साथ जाता है। वह सुखी है।''

अनेक प्रकार के ऋणों का उल्लेख है। हम छोटे–छोटे देवी देवताओं के प्रति ऋणी हैं, अन्न जल आदि देने वाले अन्य लोगों के प्रति ऋणी हैं, तथा उन विविध प्रकार के जीवों का हमारे ऊपर ऋण है जिनसे हम सहायता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार तथा अन्य अनेक रूपों में हम ऋणी हैं, पर जो अन्य लोगों के प्रति ऋणी नहीं है, जो अन्य लोगों पर निर्भर हुए बिना अपने पास जो कुछ है उससे संतुष्ट है, जिसके पास रहने के लिये अपना स्थान है, तथा कुछ उपार्जन कर उसे भगवान् को अर्पित करता है–वह सुखी मनुष्य है।

यह जगत् क्षणभंगुर है। अपने प्रति कोई कामना रखना भी एक प्रकार का ऋण है, पर कृष्ण के प्रति हमारी जो भी इच्छा हो वह कोई ऋण नहीं बनेगी। कृष्ण ने इसका उल्लेख स्वयं किया है :

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता, ९.२७)

''तुम जो कुछ करो, जो कुछ खाओ, जो कुछ दान करो तथा तप करो, सब कुछ मेरे लिये करो, फिर अवशिष्ट का उपयोग करो। इस

प्रकार तुम्हारे ऊपर कोई ऋण नहीं आयेगा। जो कुछ तुम मुझे अर्पित करोगे रूपान्तरित हो जायेगा और अलौकिक हो जायेगा।''

जब हम किसी मार्ग पर चलते हैं तो अपना पैर अनेक दूर्वादलों पर रखते चलते हैं, पर जब वही दूर्वादल ठाकुर को अर्पित हो जाता है तो हम उसे अपने सिर पर धारण करते हैं। हम उसे अपने पैरों के नीचे कुचलने की सोच भी नहीं सकते। क्यों ? हम ऐसी बात इसलिये नहीं सोच सकते क्योंकि हम मानते हैं कि वह कृष्ण को अर्पित वस्तु है अतः दिव्य स्थिति प्राप्त कर चुकी है। इसलिये कृष्ण कहते हैं, ''यदि तुम सब कुछ मेरी संतुष्टि के लिये कर सकते हो तो तुम ऋणी नहीं होगे, पुनश्च इस भौतिक धरातल पर रहते हुए भी तुम लाभान्वित होंगे।'' यह प्रमुख सिद्धान्त है जिसे इस जगत् में रहने के लिये हमें पालन करना है। दूसरों से लिये बिना हम जीवित नहीं रह सकते। *जीवो जीवस्य जीवनम्*—जीवित रहने के लिये एक को दूसरे का वध करना होता है। प्रतिदिन हम हजारों हजार जीवित प्राणियों को मारते हैं। वायु तक में अनेक जीव मरे पड़े हैं, और जब हम साँस लेते हैं तो अपना रक्त शुद्ध करने के लिये उनमें से अनेक को मार देते हैं। दूसरों से ग्रहण किये बिना हम जी नहीं सकते, किन्तु शास्त्रों में जिस प्रकार के जीवन का विधान है वह है कृष्ण की सेवा के लिये जीना। वही हमारी जीवन ज्योति है।

भक्ति विनोद ठाकुर ने कहा,

मानस, देहो, गेहो, जो किछु मोर।
अर्पिलु तुवा पदे नन्दकिशोर।।

''मैं सर्व समर्पण कर रहा हूँ, और आज की तिथि से आप मेरे तथा मुझसे संबंधित हर वस्तु के स्वामी हैं। अतएव जो कुछ मैं करूँगा, आपके खाते में जायेगा, मेरे में नहीं।''

सम्पदे, विपदे, जीवनेमरणे
दाय मम गेला तुवा ओपद बरणे।
मारोबी राखोबी—जो इच्छा तोहारा
नित्य-दास प्रति तुवा अधिकारा।।

"आप जैसा चाहें, करें।" कृष्ण के प्रति इस प्रकार का समर्पण हमें सच्चा सुख देता है। यदि हम कृष्ण के प्रति समर्पण कर सकें तो हम न तो अपने कर्म के प्रति न किसी अन्य वस्तु के प्रति उत्तरदायी होंगे। यह सीख आपको श्रीमद्भगवद्गीता में मिलेगी : सम्पूर्ण गीता इसे व्यक्त करने के लिये ही बनी है। वास्तव में सारे शास्त्रों का प्रयोजन इसे ही प्रतिपादित करना है :

स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुं विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाश्च एतयोरेव किंकराः।।

"हमें कृष्ण को नहीं भूलना चाहिए तथा हमें कृष्ण की पूजा अवश्य करनी चाहिए।" उन्हें न भूलना निषेध है, तथा उनका सतत् स्मरण सम्पत्ति है। कभी कभी हम सोच सकते हैं कि यह बड़ा कठिन है और यह सत्य भी है, पर अन्य कोई उपाय नहीं है। इसके बिना हम करें क्या ? कृष्ण चेतना ही आगे बढ़ने का एकमात्र मार्ग है—अन्य कोई मार्ग नहीं है।

भूमौ स्खलितपादानां, भूमिरेवावलम्बनम्
त्वयि जातापराधानां, त्वमेव शरणं प्रभो

(स्कन्दपुराण)

जब एक बच्चा चलना सीखता है, वह अनेक बार गिरता है, किन्तु वह पुनः खड़े होने के लिये धरती का ही सहारा लेता है, और यही हमारी एकमात्र आशा है। हम कोई भी अपराध करें, यदि हम उसके ऊपर भरोसा रखते हैं, तो वह हमें उस अपराध से मुक्त रखेगा। अतः हमें कृष्ण के चरण कमलों में आश्रय लेना चाहिये और वही कृष्ण चेतना है।

महाप्रभु ने कहा—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्न वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे—
र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः।।

"हम राजा, ब्राह्मण, वैश्य, अथवा शूद्र नहीं हैं, हम गृहस्थी, वानप्रस्थी अथवा संन्यासी नहीं हैं, ये हमारी पहचान नहीं है। हमारी वास्तविक पहचान *गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दास दासानुदासः*—दासों के दासों के दास मात्र होना है। यही हमारी एकमात्र पहचान है और जो कोई कृष्ण चेतना का पालन करेगा, केवल इस रूप में कर सकता है। यदि वह वैदिक संस्कृति, हिन्दू धर्म अथवा किसी अन्य पथ का अनुसरण करना चाहेगा, तो वह वास्तव में कृष्ण चेतना को प्राप्त नहीं कर पायेगा। हमें वैष्णवों का अनुसरण अवश्य करना चाहिए। कृष्ण परमात्मा के सर्वोच्च स्वरूप हैं और जो उनकी पूजा करता है वह वैष्णव है। केवल एक मार्ग, एक गन्तव्य और जीवन का एक ध्येय है, और सफल होने के लिये वह एकमात्र वस्तु है जिसे हमको समझना है। हम इसे स्पष्ट रूप से अपने श्री गुरु महाराज, श्रील स्वामी महाराज, तथा श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के विचार और स्वरूप में विशेष ढंग से देख सकते हैं। वस्तुतः वे बड़े क्रान्तिकारी थे। इस प्रकार की क्रान्ति पहले नरोत्तमदास ठाकुर के काल में भी हुयी और किसी सीमा तक रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के समय में भी।

रूप और सनातन ने वस्तुतः किन्हीं अस्तित्वशील धारणाओं को तोड़ा नहीं, किन्तु वे हमारी परम्परा के संस्थापक थे। भक्ति विनोद ठाकुर भी अपने दृष्टिकोण में कुछ विनम्र ही थे : वे वेदों की अवधारणा में अधिक हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थे। यद्यपि नरोत्तमदास ठाकुर ने वैदिक साधना के नियमों को तोड़ा और अभी हाल में हमने देखा है कि ऐसी एक क्रान्ति श्रील स्वामी महाराज तथा अपने श्रील गुरुमहाराज के विचारों से आरंभ हुयी तथा अनेक स्पष्ट उदाहरण हैं। यह हमारे लाभ के लिये है कि ऐसी क्रान्ति हुयी है तथा हम दिव्यता के साथ इतना उदार सम्बन्ध प्राप्त कर परम भाग्यशाली हैं।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

छठा प्रवचन

वास्तविक भाग्यशाली

एक वैष्णव का तिरोभाव और तद्जनित हमारा उससे वियोग बड़ा दुखद है किन्तु सब कुछ कृष्ण की इच्छा से होता है, अतः हमको सहन करना चाहिये तथा अपने भावातीत गन्तव्य की ओर अपनी यात्रा जारी रखनी चाहिए। युद्ध भूमि में अनेक विषमतायें उत्पन्न हो सकती हैं, पर एक जनरल के आदेश पर एक अच्छे सैनिक को आगे बढ़ना ही होता है। हमारे पास वास्तव में आगे बढ़ने के प्रयास के सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है।

महाप्रभु के काल में हम एक उदाहरण देख सकते हैं जब श्रीवास पण्डित के घर महाप्रभु के हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन और नृत्य करते समय उनके पुत्र का देहावसान हो गया। श्रीवास का मन शान्त था पर उनके अन्य संबंधी बड़े दुखी थे यद्यपि महाप्रभु के गायन–नृत्य में बाधा पहुँचाने के भय से वे जोर से चिल्लाये नहीं। यद्यपि महाप्रभु ने अनुभव किया कि कुछ गड़बड़ है क्योंकि वे पूरा आनन्द नहीं अनुभव कर पा रहे थे। जब महाप्रभु ने पूछा कि क्या कोई अशुभ घटना है, श्रीवास ने उक्त घटना को बतलाया नहीं, उसके स्थान पर उन्होंने महाप्रभु से कहा कि सब कुछ ठीक है और उनसे अपना कार्यक्रम जारी रखने की प्रार्थना की। उस पर महाप्रभु ने कहा, "नहीं मैं सोचता हूँ यहाँ कुछ हुआ है। क्या हुआ है और आप उसे मुझसे क्यों छिपा रहे हैं ?" श्रीवास ने उत्तर दिया, "हाँ प्रभो, यह हुआ है : मेरे पुत्र का देहान्त हो गया है किन्तु मैं आपके भाव में विघ्न नहीं डालना चाहता था।"

तब महाप्रभु उस लड़के को देखने गये और पूछा, "तुम हम लोगों को क्यों छोड़ रहे हो ?" जिस पर लड़के ने, यद्यपि वह मृत था, बोला, "सब कुछ आपकी इच्छा से होता है। आपकी इच्छा से अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप मैंने यहाँ श्रीवास पण्डित के पुत्र के रूप में जन्म लिया,

किन्तु अब इस शरीर में मेरा समय पूरा हो गया है तथा आपकी ही इच्छा से मैं अब इस दूसरी स्थिति में जा रहा हूँ। यह सारे जगत् में हो रहा है और यह इस धरातल के नियमों में से एक है, किन्तु मैं इतना भाग्यशाली हूँ कि मुझे आपकी दया और सान्निध्य प्राप्त हुआ है।"

मृत लड़के से यह सुनकर हर कोई अचम्भित रह गया। फिर सबने चैतन्य महाप्रभु के साथ कीर्तन और नृत्य किया, तथा उसके शरीर को घर से बाहर निकाला। यह घटना महाप्रभु की उपस्थिति में हुयी, तो हम अपनी वर्तमान स्थिति के विषय में क्या कह सकते हैं ?

एक और कहानी है जो बुद्ध के समय में हुयी घटना के संबंध में बतलायी जाती है। एक महिला के केवल एक पुत्र था पर उसकी मृत्यु हो गयी इसलिये वह बुद्ध के पास गयी और प्रार्थना की, "आप भगवान् के अवतार हैं, अतः कृपया मेरे पुत्र का जीवन लौटा दें।

बुद्ध ने उत्तर दिया, "हाँ मैं कर सकता हूँ, किन्तु उसे पुनः जीवित करने के लिये कुछ वस्तुओं की आवश्यकता है"

उसने विनती की, "कृपया बतायें क्या चाहिए, और उसे मैं ले आऊँगी।" बुद्ध ने कहा, "गाँव में घर–घर जाओ और किसी ऐसे घर से कुछ सरसों के दाने ले आओ जिसमें किसी की मृत्यु न हुयी हो।"

स्त्री बड़ी सरल–हृदया थी और घर–घर पूछती डोली, "कृपया बतायें कि क्या आपके परिवार में कभी मृत्यु नहीं हुयी। ऐसे घर से मुझे कुछ सरसों के दाने लेने हैं जिससे महापुरुष बुद्ध मेरे पुत्र को जीवित कर सकें।" पर हर घर में उसे एक ही उत्तर मिला, "ओह मेरे पिता मरे हैं, "मेरे चाचा मरे हैं," "मेरे भाई मरे हैं," इत्यादि।

तब वह बड़ी दुखी होकर भगवान् बुद्ध के पास गयी और अश्रुपूरित नेत्रों से उनसे बोली, "मैं आपके पास उस प्रकार के बीजों को नहीं ला सकी हूँ।"

"अरे क्या हुआ ? इस गाँव में तुम्हें एक भी घर–गृहस्थ नहीं मिल सका जिसमें किसी ने अपना शरीर त्याग न किया हो ?

उसने उत्तर दिया, "ऐसा ही है।"

उस पर बुद्ध ने कहा, "पर तुम चिल्ला क्यों रही हो ? यह भौतिक धरातल की प्रकृति है।"

श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं :

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।

(श्रीमद्भगवद्गीता – २.२७)

"इस भौतिक धरातल का स्वभाव है कि जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है।" तथा :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

(श्रीमद्भगवद्गीता – २.२२)

"जैसे हम पुराने जीर्ण शीर्ण वस्त्र को त्याग कर नया धारण करते हैं, उसी प्रकार इस जगत में जीव का स्वभाव है कि वह पुराने शरीर को छोड़कर नवीन शरीर ग्रहण करता है।"

जो आत्मा भाग्यशाली है एक श्रेष्ठ, शुभ शरीर प्राप्त करेगा जिसमें उसे कृष्ण चेतना की साधना का अवसर मिले।

भगवद्गीता में कृष्ण ने इस जागतिक धरातल पर सब कुछ परित्याग करने के कुछ उपाय भी बतलाये :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

(श्रीमद्भगवद्गीता – ४.९)

"जो तात्त्विक रूप से समझ सके कि मैं कौन हूँ, मेरा जन्म क्या है, मेरा आविर्भाव क्या है, वह इस भौतिक धरातल पर पुनः जन्म नहीं

लेगा।" वह उचित ज्ञान श्रीगुरु तथा वैष्णवों के दिव्य ज्ञान से प्राप्त होता है, और उससे वह वास्तविक मुक्ति प्राप्त करता है।

मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः

(श्रीमद्भगवद्गीता – २.१०.६)

यह शरीर त्यागने के बाद यदि दूसरा शरीर ग्रहण करना पड़े तो व्यक्ति मुक्त नहीं कहलाता। न तो यथार्थ मोक्ष वह है जब व्यक्ति दूसरा शरीर धारण ही न करे। वास्तविक मुक्ति तो तब है जब आत्मा भावातीत जगत में सेवा में प्रविष्ट हो जाये–*मुक्तिर्हित्वान्यथा रूप स्वरूपेण व्यवस्थितिः।* भक्तों के सत्संग और दया से इसे प्राप्त करना आसान है। यदि हम एक ऐसे भक्त के पदचिह्नों पर चलते हैं जो कृष्ण सेवा के पीछे सदा दौड़ रहा है, तो हम भी सेवा लोक में सरलता से प्रवेश पा सकते हैं।

दूसरा उद्धरण है–

मुक्तापि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते

सामान्य "मुक्तात्माओं" में कुछ बड़े भाग्यशाली होते हैं और वे भी भावातीत सेवा लोक में प्रवेश का अवसर पा सकते हैं। उनकी भौतिक जगत् में आसक्ति नहीं है और अनुभवातीत लोक के प्रति भी उनमें यत्किंचित् अथवा बिल्कुल आसक्ति नहीं है। वे तटस्थ सीमा रेखा पर रहते हैं पर वैष्णवों की कृपा से वे भी सेवा–जगत् में प्रवेश का अवसर पा जाते हैं।

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्थाः अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता – १.७.१०)

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए महाप्रभु ने कहा कि कृष्ण का एक गुण यह है कि वे मुक्तात्माओं तक को आकर्षित करते हैं। जिन्हें इस भौतिक जगत् में आसक्ति नहीं है और अपनी अलौकिक स्थिति से आत्म–तुष्ट हैं, वे मुक्त हों अथवा अब भी इस जगत् में हों, वे भी भक्ति

भाव से आकृष्ट होते हैं। वे भी कृष्ण के अतीन्द्रिय सेवा जगत् को प्राप्त करने की स्पृहा रखते हैं।

कृष्ण की विशेषता है कि पहले वे आकर्षित करते हैं और फिर अपनी आह्लादमयी दया वितरित करते हैं, इस प्रकार अपने भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं। उन्होंने उक्त गुण अर्जित नहीं किया, वह तो पहले से उनके स्वरूप में ही निहित है।

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्थाः अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः।।

इसलिये भक्त सदैव अपने को कृष्ण की सेवा में निरत रखते हैं। इस सांसारिक धरातल पर प्रत्यक्ष सेवा संभव नहीं है पर श्रीगुरु एवं वैष्णवों की कृपा से हमें सेवा का शुभ अवसर मिलता है। सेवकगण गुरुदेव की आज्ञा तथा शास्त्रों के माध्यम से प्राप्त कृष्ण की आज्ञा के सिवा अन्यत्र कहीं नहीं देखते। वे उस निर्देश का सर्वतोभावेन पालन करते हैं।

बहुजन्म करे यदि श्रवण-कीर्त्तन
तबु त ना पाय कृष्ण-पदे प्रेम-धन

(चैतन्यचरितामृत आदि ८.१६)

प्रश्न उठ सकता है कि हम अपने भीतर आध्यात्मिक चेतना का प्रकाशन तुरन्त क्यों नहीं पाते। कारण यह है कि हम शास्त्र विहित निर्देश का यथोचित पालन नहीं कर रहे हैं। विशेष रूप से हम नामापराध की गलती कर रहे हैं : हम पवित्र नाम के प्रति अपराधी हैं। शास्त्रों में दस प्रकार के नामापराध बतलाये गये हैं और सावधानी के साथ उनसे बचना आवश्यक है।

श्रील स्वामी महाराज प्रभुपाद के पश्चिम जाने से पहले वैष्णव–अपराध, नाम–अपराध और धाम–अपराध का कोई अवसर नहीं था, इसलिये पाश्चात्यों ने बड़ी शीघ्रता से महाप्रभु के मिशन के साथ संबंध जोड़ लिया। चूंकि उन्होंने ऐसे अपराध नहीं किये थे, अतः उन्होंने समर्पणपूर्वक स्वामी महाराज को सुना और उसका पालन किया तथा

सरलता से प्रगति की। बाद में जब उनमें से कुछ के कार्यों ने नाम–अपराध किया तो वे संकट के समुद्र में गिर गये।

किसी भी विषय में पहला अध्याय सामान्यतया बड़ा सरल–केवल सुनना होता है। प्रथम वाचन पाठ केवल द्विवर्ण या त्रिवर्ण शब्द का बड़ा आसान होता है, किन्तु हर अगला पाठ कठिनतर होता जाता है क्योंकि दीर्घ पदों को समझना और याद रखना आवश्यक हो जाता है। यदि आरंभिक स्तर पर हमारा पाला बड़े–बड़े शब्दों से पड़ जाये तो हम उनका अर्थ समझने में भ्रमित हो जायेंगे।

भक्तियोग में स्पष्ट किया गया है कि प्रथम अध्याय है उत्साहमयी : वह स्तर जब भक्त उत्साहपूर्वक कृष्णचेतना की साधना करते हैं। तत्पश्चात् धन तरला अवस्था में सेवा भाव में कुछ अवरोह आता है। भक्तिपरक सेवा के अनेक स्तर हैं तथा उनकी व्याख्या श्रील भक्ति विनोद ठाकुर की कृतियों में की गयी है।

जब श्रील स्वामी महाराज श्रीमन् महाप्रभु के दूत के रूप में पश्चिम गये तो वहाँ अनेक शुभ आत्माओं को कृष्ण चेतना की साधना का अवसर प्राप्त हुआ, तथा अनेक ने उस अवसर का लाभ उठाया। साधना का प्रयास करते समय कठिनाइयों का आना अपरिहार्य है, और यदि हम अपनी धार्मिक क्रियाओं के प्रति सजग और सचेत नहीं हैं तो हम अपनी कथा में अवश्य असफल हो जायेंगे। जो बिना अपराध के साधना करता है, प्रोन्नति प्राप्त करेगा। यद्यपि कुछ कथाओं के पश्चात् प्रोन्नति बन्द हो सकती है और उनके समक्ष कनक, कामिनी तथा प्रतिष्ठा जैसी अशुभ वस्तुएँ–धन, स्त्रीसुख, नाम यश आदि आ सकते हैं। नाम और प्रतिष्ठा बड़ी बुरी वस्तुयें हैं। हम मान सकते हैं कि हमारे भक्तिपूर्ण जीवन को कोई नष्ट नहीं कर सकता, पर नाम और ख्याति वैसा कर सकते हैं अतः उसकी सावधानी से उपेक्षा की जानी चाहिए।

अब तक श्रील गुरु महाराज के अनुग्रह से हम अपने को उससे सुरक्षित अनुभव कर सकते हैं किन्तु यह सोचना मूर्खता होगी कि हमने आध्यात्मिक जीवन प्राप्त कर लिया है और इसलिये किन्हीं अन्य खतरों

से रक्षा की आवश्यकता नहीं रह गयी है। हमें किसी भी प्रकार के "इन्फेक्शन" से बचने के लिये सदा सावधान रहना होगा। यदि हम एक लम्बे समय तक पेनिसिलीन लेते रहें तो हमारे शरीर के बैक्टीरिया उसके प्रति प्रतिरोधी हो जाते हैं और फिर पेनिसिलीन काम नहीं करती। अतएव दूसरी दवा आवश्यक हो जाती है।

जब हम स्वयं एक "इनफेक्शन" के प्रति प्रतिरोधी हो जाते हैं तो दूसरा हमारे ऊपर आक्रमण करने का प्रयास करेगा जिससे हमारी आध्यात्मिक प्रगति अवरुद्ध हो जाये।

यदि वैष्णव–अपराध उठे हाथि माथा।
उपाड़े वा छिन्डे तार सूखि याय पाता।।

(चै. च. मध्य १९.१५६)

इस श्लोक का अभिप्राय है कि वैष्णव अपराध एक मत्त हाथी के समान है जो भक्तिपरक सेवा की लता को जड़ से उखाड़ लेता है। कभी–कभी यह समझना बड़ा दुरूह होता है कि "मत्त हाथी अपराध" क्या है। कभी हमें किसी व्यक्ति द्वारा बुरी सलाह मिल सकती है जो एक वैष्णव प्रतीत होता है। हम किसी को अच्छा वैष्णव मान सकते हैं किन्तु हमें उससे बुरा परामर्श मिलता है और हम उसका पालन करते हैं, वह बड़ा घातक होगा और हम नरक में जायेंगे। अतः हमें अपनी स्थिति के प्रति सदैव सावधान रहना चाहिए, और गुरु, वैष्णव तथा शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान से हमें कोई भी अपराध करने से बचने का प्रयास करना चाहिए।

प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः

मध्यमाधिकार में व्यक्ति को सामान्यतया स्पष्ट चेतना (भागवत ११.२.४८) होती है कि शुभ क्या है अशुभ क्या है। इस अवस्था में, उचित निर्देश से, व्यक्ति सामान्य रूप से, सेवा में दृढ़ता पूर्वक अग्रसर हो सकता है। किन्तु उस समय अपराध करने से बचना बहुत कठिन है जब तक सद्–वैष्णव के परामर्श के रूप में हमें वैष्णव अपराध का निर्देश मिल जाता है। इसलिये जब कभी आवश्यकता पड़े हमें नरोत्तम

दास ठाकुर के परामर्श का पालन करना चाहिए तथा निष्ठापूर्वक वैष्णवों से प्रार्थना करनी चाहिए कि, "कृपया हमें बचा लें।"

हमें प्रार्थना करनी है, "मेरे गुरु महाराज, कृपया मुझे बचायें, "हे वैष्णव ठाकुर कृपया मेरी रक्षा करो।"

शास्त्रों का निर्देश है कि हमें किसी के विषय में ठीक ज्ञान नहीं है तो हम उसे गौरवान्वित नहीं करेंगे, अपमानित नहीं करेंगे तथा हम उसके पास जायेंगे नहीं'. उसके स्थान पर हम उसकी उपेक्षा करेंगे—*ना निन्दिव ना वन्दिव ना जाव तापास।* यदि हम इस रूप में आगे बढ़ सकते हैं तो हमें अनुभवातीत गन्तव्य अवश्य प्राप्त होगा।

अपने को यह स्मरण दिलाना आवश्यक है कि हमने जो पहले से प्राप्त कर लिया है, वह हर किसी द्वारा सरलता से प्राप्य नहीं है। हमारा श्रील स्वामी महाराज, श्रील गुरु महाराज, रूपानुग सम्प्रदाय से संबंध है तथा हमारा सम्बन्ध महाप्रभु से है। स्वामी महाराज के पश्चिम जाने से पहले वहाँ कोई महाप्रभु का नाम नहीं जानता था, किन्तु अब अनेक लोग कृष्णनाम का कीर्तन कर रहे हैं, हरे कृष्ण महामंत्र जप रहे हैं और नाच रहे हैं। हमारे पास बहुत कुछ है और अब उसे सावधानीपूर्वक अपने हृदय में सँजोकर रखने की आवश्यकता है। समय आ गया है कि हम अपनी भक्ति—लता की सुरक्षा करें अन्यथा वह नष्ट हो सकती है।

यदि हम इस पर अपना ध्यान केन्द्रित करें कि शास्त्रों में क्या लिखा है अथवा वैष्णवों द्वारा क्या कहा गया है तो हम उत्साहित अनुभव कर सकते हैं, किन्तु कभी—कभी अपनी लम्बी यात्रा में आगे आने वाले निषेधों, खतरों और कठिनाइयों के विषय में अनेक बातें सुनकर हम निराश भी हो सकते हैं। अतः हमें अपनी शक्ति का उपयोग विशेष रूप से भक्तिलता को सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए अन्यथा हम सब कुछ खो देने के बड़े खतरे में हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं।
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।।

(भगवद्गीता ६.२१)

भौतिक ब्रह्माण्ड का स्वभाव है कि शुभ कर्मों को करने से हम स्वर्गलोक को जाते हैं तथा अशुभ कर्मों को करने से हम नरकों के लोक में जाते हैं। मध्य भाग में पार्थिव लोक हैं। सारांश में हम कह सकते हैं कि यहाँ लोकों के ये तीन स्तर हैं। किन्तु वस्तुतः हम इन सारी भौतिक वस्तुओं को समझने के उत्सुक नहीं हैं। हमारी आवश्यकता अपने आपको समझना आत्म साक्षात्कार है। मैं कौन हूँ ? मेरा कर्त्तव्य क्या है ? मेरा सर्वोच्च गन्तव्य क्या है ? मेरी सम्पदा क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है और हम भाग्यशाली हैं कि महाप्रभु ने स्वयं हमें मार्गदर्शन दिया है। यह निश्चयपूर्वक स्थापित है कि कृष्णचेतना सर्वोच्च अवधारणा है, और श्रील गुरु महाराज तथा श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद की कृपा से यह सर्वत्र अपराजेय है। हम अनुकरण के प्रयास में हैं तथा हम अपने को इतना भाग्यशाली मानते हैं क्योंकि हमने आकर इस कृष्ण चेतना से संबंध जोड़ा है। यदि हम यहाँ न आये होते तो हमने मायावादियों (निर्गुणवादियों), अथवा सहजियों (अनुकरणवादियों) अथवा अनेक आंशिक धार्मिक अवधारणाओं में से किसी अन्य को पकड़ा होता। अपनी प्राप्त सम्पदा का महत्त्व समझकर हम कृष्णचेतना के इस मार्ग में सहर्ष और सावधानी से अपनी श्रद्धा तथा सेवा भाव की सुरक्षा करेंगे।

जब मैं भक्तों के सेवा भाव को देखता हूँ जो महाप्रभु के मिशन के प्रचार हेतु इतना त्याग कर रहे हैं तथा इतनी शक्ति लगा रहे हैं तो मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती है।

हम बड़े भाग्यशाली हैं कि हमारे पास बहुत कुछ है, अब समय है कि हम उस "सम्पदा" का उपयोग उचित रीति से करें। मैंने श्रील गुरु महाराज से उक्ति सुनी, "धर्म समुचित समायोजन है।" सब कुछ प्रदत्त है परन्तु हमारे लिये आवश्यक है कि उचित समायोजन करें : हम समझें कि हम कौन हैं; हमारा कर्त्तव्य क्या है; कृष्ण कौन हैं और दास कौन है।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

• भाग तीन •

लिखित शब्द

श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज के पत्राचार से

● प्रश्न : हम अपने वास्तविक आध्यात्मिक घर को वापस जाना चाहते हैं। और उसके लिये प्रयास कर रहे हैं पर हम अपने को इस जगत् में सुख की खोज में ग्रस्त पा रहे हैं। हमें क्या करना चाहिए ?

● श्रील भक्ति सुन्दर महाराज (श्रील महाराज) ने उत्तर दिया : बद्धात्माओं के लिये परमात्मा के पास वापस जाने के लिये सच्चे वैष्णवों की दया और आशीर्वाद प्राप्त करना बड़ा आश्चर्यजनक और आवश्यक है। इस प्रकार मैं सोचता हूँ कि आप बड़े भाग्यशाली हैं क्योंकि आपको श्रील गुरु महाराज तथा श्रील स्वामी महाराज दोनों की दया प्राप्त हुयी है। सारी बद्धात्मायें सच्चे सुख की खोज में प्रयासरत हैं पर आपको मालूम है कि इस भौतिक जगत् में उसे प्राप्त करना संभव नहीं है। सारा आनन्द, सारा आह्लाद, सारा सुख तथा विजय के सारे स्रोत कृष्ण और कृष्ण–लोक से आ रहे हैं। वास्तव में हम सब उस दिव्य सेवा के सदस्य हैं किन्तु दुर्भाग्यवश तथा गलतफहमी के कारण हम इस सांसारिक धरातल पर भ्रामक सुख से गृहीत हो गये हैं। पर कृष्ण बड़े दयालु हैं और उन्होंने हमें अपने दिव्य स्वामियों के माध्यम से अपने घर पहुँचने का अवसर दिया है। जो कुछ तुम्हें उनसे प्राप्त हुआ है उसे पल्लवित और पुष्पित करना आवश्यक है और वह साधना (आध्यात्मिक अभ्यास) के माध्यम से संभव है। यदि हम भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन कर, पवित्र ग्रन्थों को पढ़ कर, सच्चे पवित्र वैष्णवों की सेवा कर, अपराध रहित जीवन व्यतीत कर और उनके प्रसाद से अपनी जीवन रक्षा कर उनके निर्देशों का पालन करते हैं, तो हम अपने पवित्र घर को अवश्य लौटेंगे। वह सच्ची साधना है और चूंकि आप वैसा करने का प्रयास कर रहे हैं, मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

● प्रश्न : मैं बड़ा अप्रसन्न और दुखी हूँ क्योंकि कल मैं एक व्यक्ति द्वारा लूट लिया गया जिसने एक बन्दूक निकाली और मेरा बैग छीन लिया, जिसमें अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त मेरी जपमाला थी। मेरे संबंधियों में एक भक्त है जिसके पास एक अतिरिक्त माला है जो श्रील गुरु महाराज द्वारा आशीर्वाद प्राप्त है। मैं पूछ रहा हूँ कि मैं क्या करूँ तथा क्या मैं इस अतिरिक्त माला के दानों पर कीर्तन करूँ ?

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : यद्यपि आपने बड़ा दुर्भाग्य व्यक्त किया है किन्तु मैं कह सकता हूँ कि आप एक भक्त के सच्चे भाव को व्यक्त करें। इसमें सन्देह नहीं कि आपके माला की चोरी हो जाना बड़ी बुरी बात है, पर आपको समझना चाहिए कि कृष्ण अनेक प्रकार से हमारी परीक्षा ले रहे हैं। इस रूप से आप मान सकते हैं कि यह आपकी साधना की ही एक परीक्षा है। मैं यह भी देखता हूँ कि कृष्ण ने आपकी रक्षा की क्योंकि आप डकैती के समय कोई चोट नहीं खाये। अब आप कुछ दिनों प्रतीक्षा कीजिए और यदि तब भी आपकी सुमिरनी वापस नहीं आती तो आप उस अतिरिक्त माला पर कीर्तन कर सकते हैं जो आपके संबंधी के पास है।

हमारी साधना–भक्ति के लिये मुख्य आवश्यक वस्तु है कि हम तीन गुण विकसित करने का प्रयास करें : प्रार्थना, निष्ठा तथा समर्पण। आपके पास श्रील गुरु महाराज की कृपा है और आप भक्तों के साथ रहते हैं। इस रूप में मैं आपको भाग्यशाली मान सकता हूँ। यहाँ मठ पर तथा श्रील गुरु महाराज के भारत स्थित केन्द्रों में हम चतुर्दिक विश्व से अनेक भक्तों का सत्संग प्राप्त कर रहे हैं। यद्यपि पर्यावरण की स्थिति सर्वत्र एक सी नहीं है, फिर भी हर कोई अन्य लोगों को महाप्रभु के संबंध में और अपने श्रील गुरु महाराज के विषय में बतला सकता है। इस प्रकार भवसागर पार करने तथा सर्वोच्च भावातीत गन्तव्य पर पहुँचने के लिये वे भी प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

● प्रश्न : मेरी इच्छा है कि मेरी पत्नी भी कृष्ण चेतना के इस मार्ग में आ जायेगी एवं हम साथ–साथ प्रगति करेंगे। गुरुदेव, मैं सदैव आपकी दिव्य कृपा हेतु प्रार्थना कर रहा हूँ तथा मैं आपकी दया का

आकांक्षी हूँ।

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : शास्त्र के निषेध और विधिपरक नियम हैं :

स्मर्तव्यः सततं विष्णुविस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकरा।।

जिसका अर्थ है : श्रीगुरु–गौरांग की सेवा के अपने अनुभवातीत कर्त्तव्य को हमें नहीं भूलना चाहिए, तथा : हमें कृष्ण को सदैव अपनी चेतना में रखना चाहिए।

मैं सोचता हूँ कि आपके सान्निध्य से आपकी पत्नी का भाव भी अब धीरे–धीरे कृष्णचेतना की ओर परिवर्तित हो रहा है। वह एक अच्छी महिला है और वह तुम्हारे प्रति प्रेमभाव भी रखती है। जब वह स्वयं अपनी ओर से अपना सर्वस्व कृष्णार्पण करने हेतु तैयार हो जायेगी और उसे आपका सानिध्य मिलेगा, तब वह कृष्ण चेतना को भलीभाँति समझने योग्य हो जायेगी तथा उसके मनके सारे उपद्रव दूर हो जायेंगे।

जब श्रीमन् महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु ने अपनी प्रकट लीलाओं का संवरण कर लिया उनके अनेक बड़े भक्त इस भौतिक धरातल पर प्रचार हेतु पधारे जिससे पतित आत्माओं का उद्धार हो सके। यह भी कि अनेक शास्त्रों में हमें अनेक उपदेश दिये गये हैं; किन्तु वह वैदिक संस्कृति की एक प्रणाली के अन्तर्गत था। यह भी स्पष्ट है कि उन उपदेशों में गुप्त कोष निहित हैं जो हर व्यक्ति के सामने खुले नहीं होते।

कलियुग के प्रभाव के कारण धीरे–धीरे अतीन्द्रिय ज्ञान लुप्त और संकुचित हो गया तथा माया की भ्रामक क्रियायें सब कुछ विजित करने का प्रयास करने लगीं। किन्तु श्रीमन् महाप्रभु के सर्वप्रिय भक्त श्रील ठाकुर भक्तिविनोद के अनुग्रह से हमें इस १६ वीं शती के अन्त और २०वीं शती के आरम्भ में श्रीलप्रभुपाद भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्राप्त हो गये जो उदात्त थे और जिन्होंने पुनः कृष्ण चेतना का प्रत्येक

दिशा में गौरवपूर्ण ढंग से वितरण किया। उन्हीं श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद से हमें दो विशेषज्ञ, कृष्ण के अनन्य दास सेनापति : हमारे प्रिय दिव्य स्वामी श्रील गुरु महाराज और स्वामी महाराज जो क्रमशः मेरे सम्मान्य दीक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु हैं। वे विश्व की समस्त दिशाओं में कृष्ण चेतना तथा कृष्ण प्रेमाभक्ति के वितरण के स्रोत के उफनते हुए जलाशय का निर्माण करते हैं। हम देख सकते हैं कि हम इस बात में बड़े भाग्यशाली हैं कि हमें उनके मधुपर्क कार्यक्रम में स्पर्श और सहभाग का सुअवसर प्राप्त है। मुझे सन्देह नहीं कि जहाँ तक सम्भव है हमें उस उच्चतर धरातल से दया प्राप्त है किन्तु अब हमें अपनी तुच्छ पूँजी से आगे बढ़ना है और अपनी स्वतन्त्रता का उचित मार्ग में सदुपयोग करना है जिससे हम अपने को अधिकाधिक ग्रहण करने योग्य बना सकें।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज

सभी प्रकार के धर्मों का पूर्ण अस्वीकार श्रीकृष्ण का आरंभिक निर्देश है। तथा : *मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्त तमा मताः*—"जो मेरे भक्तों की सेवा करता है उसे मैं सच्चा भक्त मानता हूँ" शास्त्रों का अन्तिम निर्देश है।

● प्रश्न : हमने पढ़ा है कि श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज बड़ी कठोरता से रहते थे और दूसरे लोगों द्वारा बनाया कुछ भी नहीं खाते थे यद्यपि वह भगवान् को भी चढ़ाया जा चुका हो। अतः अपने विषय में, क्या हम केवल अपने द्वारा पकाये गये पदार्थों को ही अर्पण कर सकते हैं। अथवा अन्य लोगों द्वारा तैयार किये गये खाद्य पदार्थों का भी भोग लगा सकते हैं ? क्या श्रील गुरु महाराज को अर्पण करने तथा देवताओं को अर्पण करने में कोई अन्तर है ? दूसरे शब्दों में क्या हम श्रील गुरु महाराज को ऐसे नैवेद्य अर्पित कर सकते हैं जो देवताओं को नहीं चढ़ाये जा सकते ?

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : आपने श्रील गौर किशोरदास बाबा जी महाराज के नाम में जो उल्लेख किया वह निस्सन्देह सामान्य नियम है और वह उनके श्रीराधाकृष्ण के प्रति अनन्य सेवा भाव से सीधे

आ रहा है; अर्थात् वे एक भजनानन्दी बाबा जी हैं। किन्तु एक दूसरे रूप में हम देखते हैं कि हमारे श्रील गुरु महाराज, श्रील स्वामी महाराज और श्रील प्रभुपाद भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने हर वस्तु का उपयोग देश, काल और परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में कृष्ण-सेवा में किया जिससे प्रचार–मिशन की सहायता हो सके। उस रूप में उन्होंने अपना अनुग्रह संसार की समस्त पतितात्माओं पर बरसाया, तथा उन्होंने अपनी असीम भावना एवं वैकुण्ठ–वृत्ति का भी प्रदर्शन किया।

इसके योग में शास्त्रों में अन्य नियम भी हैं। स्मृति शास्त्र में कहा गया है : *द्रव्य मूल्येन शुद्धति*–यदि हम किसी वस्तु के बदले में उस वस्तु का मूल्य दे देंगे, तो जो कुछ हम खरीदते हैं वह अपने साथ उस व्यक्ति का कर्म नहीं ले आयेगी जिसने उसे बनाया है।

हम अपने कृपालु, उदात्त श्रील गुरु महाराज और श्रील प्रभुपाद के अनुयायी हैं तब हमें उनके उदाहरण का पालन एक विनम्र भाव से करना होगा।

जो कुछ हम श्रील गुरु महाराज को अर्पित करेंगे वह देवता को भी अर्पण योग्य होना चाहिए। वास्तव में मुख्य बात है कि जो कुछ पूर्ण समर्पित आत्मा द्वारा अर्पित किया जाता है श्रीश्रीगुरु एवं गौरांग द्वारा स्वीकार किया जाता है।

● प्रश्न : श्रील महाराज यहाँ भक्तों में बड़ा मतभेद है तथा अनेक भक्त स्थानीय कार्यक्रम के नेता का पालन नहीं करना चाहते। अपने भारतीय परिवार की परम्परा के अनुसार कुछ लोग कृष्ण के अतिरिक्त अवतारों एवं उपदेवताओं की पूजा कर रहे हैं। पुनश्च एक मुख्य ब्रह्मचारी अपने परिवार को वापस लौट गया है क्योंकि वे रखरखाव हेतु अधिक पैसा माँग रहे थे जो उसके पास नहीं था। इस और अन्य घटनाओं के कारण हमारे नेता की त्यागपत्र देने की इच्छा है और मैं सुझाव दे रहा हूँ कि यदि आप अपनी अनुमति दें तो मैं नेतृत्व की सहायता करने के अपने विनम्र स्थान से हट जाऊँ, यद्यपि मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे किसी अन्य रूप में कोई कार्य सौंपते रहें।

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : हम समझ सकते हैं कि एक आदर्श है, किन्तु साथ साथ हमें भक्त के मनोभावों के सभी विविध गुणों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। अपने मिशनरी कार्यक्रम के साथ उनका समन्वय करना आवश्यक है। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के काल में इस प्रकार की अनेक घटनायें हुयीं जो मुझे पता हैं और जिसे मैंने श्रील गुरु महाराज से सुना है। इस श्रीचैतन्य सारस्वत मठ में श्रील गुरु महाराज के मिशन में भी इसमें १९४७ में सम्मिलित होने के पश्चात् मैंने अनेक घटनायें देखी हैं, पर श्रील गुरु महाराज की कृपा से हमने उन कठिनाइयों का सामना किया जो बाहर तथा भीतर से भी आयीं। इसी प्रकार श्रीमन् महाप्रभु के काल में भी आप मुरारी गुप्त के चरित्र को पढ़ने का स्मरण रख सकते हैं जो श्री रामचन्द्र के निकट भक्त थे। वे एक मन्दिर में उनकी पूजा करते थे जो अब भी श्रीमायापुर में है। महाप्रभु जब दक्षिण देश (दक्षिणभारत) में प्रचार हेतु गये, वे अनेक प्रकार के भक्तों से मिले, पर वे सब कृष्ण के अथवा कृष्ण मूर्ति के अन्यान्य विविध रूपों में से किसी के भी पुजारी नहीं थे। श्रीमन् महाप्रभु के समय में अनेक उदाहरण थे और हम उनके विषय में श्रीचैतन्य चरितामृत में पढ़ सकते हैं। वहाँ हम यह भी देखते हैं कि महाप्रभु द्वारा अनेक प्रकार के भक्त सहन नहीं किये जा सके किन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं अन्य भक्तों द्वारा उनका भी सामंजस्य किया गया। आप सार्वभौम भट्टाचार्य के दामाद के दृष्टिकोण एवं अनेक समान उदाहरणों को भी स्मरण कर सकते हैं।

श्रील गुरु महाराज के समय में भी हम पाते हैं कि अनेक बातें हुयीं, पर उन्होंने भी सहन किया। जिसे वे नहीं सहन कर सके, उसका समन्वय, उनके आदेश से, मैंने किया, और अन्य लोगों से वे कहते, "रुको और देखो।"

जब हम श्रीमन् महाप्रभु के चरित्र का अवलोकन करते हैं तो हम अपने को एक निराशापूर्ण स्थिति में पाते हैं। किन्तु जब हम श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा साथ ही अपने श्रील गुरु महाराज एवं श्रील स्वामी महाराज के कृपापूर्ण दृष्टिकोण पर ध्यान देते हैं तो हम श्रील सरस्वती ठाकुर

का स्मरण कर सकते हैं और उसके द्वारा भावातीत साधना के अपने जीवन में पर्याप्त आशा का अनुभव कर सकते हैं। दूसरों का निष्कासन अथवा उन्हें निकाल बाहर करना बड़ा आसान है, पर उन्हें महाप्रभु की सेवा में लगाना बहुत कठिन है। भक्तों के स्वभाव में हम अनेक भिन्न प्रकार की मानसिकता, भिन्न प्रकार की क्रिया तथा विविध प्रकार की भक्ति देखते हैं किन्तु एक अच्छे व्यवस्थापक अथवा कुशल प्रचारक को एक सामंजस्य पूर्ण ढंग से उन्हें प्रभु की सेवा में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह जगत् जिसमें हम निवास करते हैं वस्तुतः त्रुटिपूर्ण धरातल है : यह एक भ्रमात्मक पर्यावरण है। हम न केवल अनुग्रह अपितु नित्यानन्द प्रभु एवं पतित पावन वैष्णवों की अहैतुकी कृपा चाहते हैं अन्यथा अपने साधनात्मक जीवन के लिये हमें आध्यात्मिक शक्ति कैसे मिलेगी ?

इस भौतिक संसार में हम पारिवारिक दृष्टिकोण की ओर देखकर भी कुछ सीख सकते हैं। एक परिवार में अनेक प्रकार के लड़के, लड़कियाँ, स्त्री और पुरुष रहते हैं पर परिवार के मालिक का कर्त्तव्य होता है कि हरेक के लिये शिक्षा, खाने–पीने आदि की सारी व्यवस्था करे। परिवार के मुखिया को सारे काम पूरे ध्यान के साथ करने चाहिए। वह कभी कभी उन्हें डाँट फटकार भी सकता है किन्तु सबके पीछे प्यार का भाव ही कार्य करता है।

नेतृत्व के अधीन तथा स्थानीय भक्तों की पूर्ण, स्वाभाविक और ऐच्छिक सेवा–शक्ति द्वारा वहाँ मिशन बनाना संभव था और भविष्य में हम वहाँ चमत्कार देखने की आशा कर रहे हैं। किन्तु इस बीच जब मैं आपका कठोर समाचार सुनता हूँ मुझे बड़ा क्षोभ होता है और मैं जानने का प्रयास कर रहा हूँ कि ऐसी स्थिति क्यों उत्पन्न हुयी। आपके स्थानीय नेता की रुझान बहुत अच्छी है किन्तु उसका केवल एक झुकाव है और एक ही दृष्टि है अतः वे भीमसेन की भाँति केवल दादा और गदा की बात समझ सकते हैं। दादा का अर्थ है युधिष्ठिर की आज्ञा और गदा उनके शरीर की शक्ति, हथियार, मुग्दर आदि है। किन्तु अन्य शास्त्रीय तत्वों को समझना भी आवश्यक है। महाप्रभु ने

जब अपना प्रथम संस्कृत विद्यालय आरंभ किया तो उसे उन्होंने संजय के घर पर चण्डी मण्डप, दुर्गा मंडप पर आरंभ किया जो स्वयं महाप्रभु का भक्त था। फिर उसके घर पर चण्डी मण्डप क्यों था और महाप्रभु ने उस चण्डी मण्डप का उपयोग क्यों किया ? महाप्रभु ने उसे गिराया नहीं अपितु उन्होंने उसका उपयोग कृष्ण चेतना के प्रचार के लिये किया।

एक नेता में अनेक विभिन्न गुण होने चाहिए और यदि उसमें वे सब न हों तो उसे युद्ध भूमि में सफल होने के लिये उन्हें प्राप्त करने के प्रयास करने चाहिएँ।

महाशय, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मेरी प्रार्थना पर ध्यान दें तथा आप दोनों सारे भक्तों के साथ सामंजस्य स्थापित करें। वहाँ के भक्त अच्छे हैं, हो सकता है कि कुछ भक्त कम बुद्धिमान हों तथा गलत रास्ते पर जा रहे हों, पर यह आवश्यक है कि उन्हें अपने स्नेह से सुधारा जाये।

किसी ब्रह्मचारी से उसके परिवार को पैसे देने के बदले में सेवा लेना उचित नीति नहीं है। यहाँ इस मठ में सारे निवासी व्यक्ति, ब्रह्मचारी, संन्यासी तथा वानप्रस्थी, वैतनिक कर्मचारी नहीं हैं अपितु वे स्वेच्छा पूर्वक और कठिन रूप से सेवा कर रहे हैं। हमने मठ की सेवा में कुछ थोड़े से वेतन भोगी लगा रखे हैं पर उनकी स्थिति बाहरी लोगों की है। मैंने पहले कोई टिप्पणी नहीं की क्योंकि मुझे पता नहीं था कि ऐसा हो रहा है।

● प्रश्न : म यहाँ अपने वरिष्ठ गुरु भाइयों के निर्देशों का, कदाचित् कुछ कठिनाई के साथ, पालन करने का प्रयास कर रहा हूँ, पर कभी–कभी मैं नहीं जान पाता कि सेवा क्या है। कृपया मुझे बतलायें ताकि मैं अपना समायोजन कर सकूँ।

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : हम अपने चतुर्दिक गुरु तथा गौरांग की सेवा कर सकते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा, *योगः कर्मसु कौशलम्,* जिसका अर्थ है कि हमारी भक्तिपरक क्रियाओं

में उचित समायोजन आवश्यक है।

हर व्यक्ति के लिये आध्यात्मिक जीवन अथवा सांसारिक जीवन का समायोजन एक ही नहीं है, अतः जो एक के लिये उपयुक्त है संभव है दूसरे के लिये उपयुक्त न हो। यह भी कि भिन्न प्रकारों की सेवा हर व्यक्ति के लिये उपयुक्त नहीं होती—वह क्षमता और स्वाद पर निर्भर होती है। भावातीत जगत् में, तथा संभव है अनुभवात्मक लौकिक जगत् में भी, महाभाव शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर की श्रेणी के अन्तर्गत आता हो। ऐसा व्यक्ति जिसके हृदय में मधुर रस की लालसा है उसमें अन्य चारों रस भी स्फुरित हो सकते हैं। श्रीचैतन्य चरितामृत में उल्लेख है कि जब महाप्रभु ने रघुपति उपाध्याय से प्रश्न किया तो उनका उत्तर था, *"आद्यैव परो रसः"*, और महाप्रभु उसे सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। अन्य भक्तों को बिना कोई विक्षेप पहुँचाये मैं केवल आपसे कह सकता हूँ : कि अनुकूल विकास हेतु तथा जिस प्रकार आपके साधनात्मक जीवन के उपयुक्त हो, अपने को उस रस—भाव में निमग्न करो।

● प्रश्न : कुछ समय के लिये यहाँ एक बड़े भक्त की स्थिति खतरनाक रही है किन्तु अब वह स्त्री, नशे और आक्रामक व्यवहार में बड़े गहरे गिर गया है। ऐसे पतन का कारण क्या है और हम क्या पाठ सीख सकते हैं ?

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : मैं वैष्णव—अपराध के परिणामों और सहजवाद के विशाल वृक्ष के बीजों को देखकर बहुत उदास और दुखी हूँ। अब मैं समझ भी सकता हूँ कि मेरे कुछ तथाकथित मित्रों के हृदयों में श्रील गुरु महाराज की सच्ची भक्तिलता का समुचित विकास क्यों नहीं होता। मुझे एक मित्र की याद आती है जिसके पास एक सुन्दर बगीचा था तथा अच्छे प्रकार के गुलाबों को उगाना चाहता था पर वह बार—बार असफल होता रहा। अन्ततः उसने विशेषज्ञों की राय ली और पाया कि थोड़ी ही दूरी पर एक विशाल वृक्ष लगा हुआ है जिसकी जड़ें सारी खुराक खींच ले रही हैं इसलिये सर्वश्रेष्ठ बीज और मालियों के होते हुए गुलाब का सुन्दर उद्यान विकसित नहीं हो पा रहा

है। यदि एक बार हृदय में सहजवाद बैठ जाता है, तो, बिना उस पेड़ को काटे और समूल उखाड़े, कोई उपाय नहीं है कि कोई अच्छे बीज पनप सकें। दूसरा एक भारी कारण भी है, जिसे आप जानते हैं, और जो भक्तिलता को नष्ट कर सकता है, वह है वैष्णव–अपराध :

यदि वैष्णव अपराध उठे हाथि माथा
उपाड़े वा छिन्डे तार सूखि याय पाता।

यह श्लोक श्रीचैतन्य चरितामृत में दिया गया है। इसलिये मेरी आप सबसे, जो श्रील गुरु महाराज के दास और अनुयायी हैं, एकमात्र प्रार्थना है "कृपया वैष्णव अपराध से बचें। और यदि किसी के हृदय–उपवन में सहजवाद का वृक्ष विकसित हो रहा है, तो सहजवाद के पौधे को तुरन्त उखाड़ फेंकें।" आप बड़े विनम्र और योग्य हैं अतः मैं सोचता हूँ आपको उसके साथ कोई समस्या नहीं होनी चाहिए। आपको अभी दिये गये उदाहरण से समझ में आ सकता है कि एक बुरी संगत और अशुभ प्रभाव हमें कहाँ ले जा सकता है। तब इस मठ के भक्तों से मेरी प्रार्थना है, "कृपया ऐसे खतरों से बचें तथा विनम्रता, सहनशीलता और दूसरों को सम्मान देने की ओर अग्रसर हों।" यह वैष्णववाद का हमारा प्रथम पाठ है, और अन्तिम पाठ भी।

● प्रश्न : हाल में एक भक्त मेरे एक मित्र के घर में कुछ दिनों के लिये अतिथि की भाँति ठहरा। वहाँ रहते समय उसने उसकी वेदी से श्रील गुरु महाराज का चित्र हटा दिया जिससे प्रत्यक्षतया उसके अपने भक्त–अतिथि अधिक घरेलू वातावरण अनुभव कर सकें। हम सबने अनुभव किया कि यह बहुत अनुचित हुआ परन्तु हम आपका स्पष्टीकरण चाहते हैं।

● श्रील गुरु महाराज ने उत्तर दिया : जब कुछ अनुचित होता प्रतीत होता है तो उसके विषय में कुछ कहना हमारा कर्त्तव्य है। अतएव यदि यह सत्य है कि भक्त का उसके श्रीगुरुदेव, श्रील गुरु महाराज का चित्र उसकी देहरी से हटा दिया गया था, तो मुझे स्पष्ट कहना है कि ऐसा करना गलत था। एक वेदी पर केवल एक चित्र होना चाहिए : गुरु का चित्र। वेदिका पर अनेक देवी देवता तथा अन्य चित्र हो सकते हैं।

पर यदि गुरु का चित्र वहाँ नहीं है तो सब कुछ बेकार है। केवल वही नहीं, हमें दूसरे सहयोगी मिशन के गुरु का भी आदर करना होगा भले ही वे ठीक ठीक उसी पारिवारिक लाइन के न हों। इस प्रकार का एक स्पष्ट उदाहरण आप श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद के मिशन के केन्द्रीय मठ, मायापुर के श्रीचैतन्य मठ में पायेंगे जहाँ मुख्य मन्दिर के हर किनारे श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीनिम्बार्काचार्य और श्रीविष्णुस्वामी देव–विग्रह रूप से प्रतिष्ठित हैं। उनकी विधिवत् पूजा–प्रतिष्ठा होती है भले ही हम सीधे–सीधे उनके अपने सम्प्रदायों से सम्बद्ध हों या नहीं।

● प्रश्न : अभी हाल में मठ का प्रतिनिधित्व करने वाले एक स्थानीय संन्यासी ने अनेक भक्तों को अपने विवाह में आमंत्रित किया, और ऐसा करने में उनके मस्तिष्कों में बड़ा विक्षोभ उत्पन्न किया। मेरी बेटी ने पूछा कि जब वे एक संन्यासी हैं तो पत्नी कैसे रख सकते हैं, पर मैं उसका उत्तर नहीं दे सका।

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : उन्होंने जो किया है वह हमारे सम्प्रदाय में बड़ा कष्टप्रद है। आपकी प्रिय पुत्री ने जो कुछ कहा वह सत्य है और जीवन में हम उसके (संन्यासी के) आश्रम परिवर्तन का समर्थन नहीं कर सकते। उसने श्रील गुरु महाराज से संन्यास लिया पर जीव, आत्मा, स्वतन्त्र हैं। कृष्ण उस स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं करते, इसलिये हर जीव को स्वतन्त्रता है कि वह स्वर्ग जाये या नरक को, और यह जीव का अपना दायित्व है। कृष्ण केवल अपने खोये हुए दास को खोज सकते हैं और उसे पुकार सकते हैं। इस संन्यासी के विषय में रिपोर्ट सुनकर मैं भी बहुत क्षुब्ध हूँ, यद्यपि मुझे पहले ही उक्त समाचार का आभास मिल चुका था।

श्रील गुरु महाराज के तिरोभाव के पश्चात् हम सर्वत्र देखते हैं कि अनेक बातें बदल चुकी हैं। कुछ परिवर्तन अच्छे हो सकते हैं, कुछ बुरे पर हमको एक तटस्थ भाव से सब कुछ सहन करना है तथा हम अपनी निजी प्रतिज्ञा और श्रीश्रीगुरु गौरांग गंधर्व गोविन्दसुन्दर जी की सेवा की उपेक्षा नहीं कर सकते। अपने अनुभवातीत सेवा भाव से हमें अपने

दिव्य गन्तव्य की ओर उत्साहपूर्वक अग्रसर होने का प्रयास करना है। आप एक अनुभवी, वृद्ध भक्त हैं और आप जानते हैं कि क्या क्या है, अतः आप एक स्वच्छ और उचित रूप में भक्त के सेवा–भाव को बनाये रखने का प्रयास करें।

आप स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि इस संन्यासी की हाल की गतिविधियां हमारे सम्प्रदाय के भीतर भटकाव हैं, न कि प्रगति। भटकाव की संभावना सर्वत्र है इसलिये हमें अपने निजी आध्यात्मिक जीवनों के लिये सावधान होना चाहिए।

● प्रश्न : मैं गंभीर वैष्णवों के साथ अच्छा सत्संग रखता हूँ और प्रवचन तथा लेखन में निरत रहता हूँ। मैं उचित ढंग से कीर्तन का प्रयास करता हूँ पर मैं आपके दिव्य परामर्श हेतु सदा प्रार्थना करता हूँ।

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : आपका आशाप्रद प्रचार कार्यक्रम अन्य वैष्णवों और गुरुभाइयों को प्रेरणा देगा। श्रील गुरु महाराज ने कहा कि जब हम महामंत्र और गायत्री मन्त्र–जो कृष्ण की अभिन्न अभिव्यक्तियां हैं–का कीर्तन और ध्यान कर रहे होते हैं, तो जाने अनजाने अधिकांशतया कुछ गलतियां होती हैं और इसलिये जप कीर्तन का समुचित फल हमें नहीं मिल पाता। परन्तु जब प्रचार के माध्यम से हम अपने प्रिय भगवान तथा दिव्य गुरुओं को गौरवान्वित करने का प्रयास करते हैं तो वहाँ हम जानबूझ कर गलत उपदेश नहीं दे सकते। इसके साथ ही हमारा एक सौ प्रतिशत ध्यान वहाँ होना चाहिए, और उस प्रकार हम अपने निष्ठापूर्ण सेवा जीवन का विकास कर सकते हैं। कीर्तन आवश्यक है। श्रीहरिनाम संकीर्तन बद्धात्माओं के लिये सदा लाभदायक है किन्तु दूसरों को उपदेश हमें भक्तिमय जीवन की शक्ति तथा कृष्ण चेतना की साधना का अधिकाधिक सुअवसर प्रदान करता है। अतएव आप आनन्दपूर्वक कह सकते हैं कि आपका भक्ति का भाव हरेक के लिये लाभप्रद है। कीर्तन बहुत अच्छा है या कीर्तन के साथ प्रचार अधिक सकारात्मक और प्रगतिशील है।

● प्रश्न : भारत से बहुत दूर रहकर मैं और मेरी पत्नी क्या सेवा कर सकते हैं ?

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : जब भक्तगण श्रील गुरु महाराज से पूछते कि वे क्या सेवा कर सकते हैं तो वे उनसे सदा अनुरोध करते कि वे श्रीचैतन्य सारस्वत मठ से सीधा सेवा सम्पर्क रखें। आप इस रूप में निष्ठापूर्वक प्रयास कर रहे हैं और आप उसी प्रयोजन के लिये त्याग कर रहे हैं। यदि एक प्रचार केन्द्र की स्थापना और संचालन करने में यह सेवा बनाये रख सकें, तो वह बहुत श्रेष्ठ होगा।

भक्त जब दूर देशों में हों तो सेवा के दो प्रधान मार्ग होते हैं। एक तो पुस्तकों के वितरण, प्रचार–व्याख्यान तथा अन्य विधियों से और वैष्णवों के आतिथ्य आदि द्वारा स्थानीय क्षेत्र में वैष्णव समुदाय की सेवा द्वारा और दूसरे इस केन्द्रीय श्रीचैतन्य सारस्वत मठ की सीधी सेवा द्वारा, जो जब बहुत दूर हो तो उसका आशय है कि मठ के सेवा कार्यों हेतु दान एवं विविध सामग्री आदि द्वारा सेवा। यह बड़ी मूल्यवान सेवा है और बड़ी सावधानी पूर्वक विविध प्रकारों से श्रीश्रीगुरु–गौरांग–गन्धर्व–गोविन्द सुन्दर जी को प्रसन्न करने का प्रयास कर रहे हैं। यद्यपि, जब संभव हो, आप समय पर यहाँ आ सकते हैं और अपनी समस्त क्रियाओं द्वारा इस मठ पर अपने श्रील गुरु महाराज के परिकर आदि, देवों, भक्तों, गुरुओं की प्रत्यक्ष सेवा कर सकते हैं। किसी न किसी प्रकार आप दोनों श्रील गुरु महाराज की इच्छा समझ सकते हैं और इसलिये आप अपने कार्यों द्वारा उन्हें प्रसन्न करने के लिये इच्छुक हैं। निस्सन्देह श्रील गुरु महाराज आपको अपने आशीष देते हैं तथा हम सब उसके लिये बड़े प्रसन्न हैं।

हम सबके लिये हमारे पास अब बहुत कम दिन रह गये हैं। यह जीवन बहुत छोटा है किन्तु हमें अपने श्रीगुरुदेव की सेवा में लगाना है। सर्वत्र और कहीं भी हमें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है पर हमें केवल आगे बढ़ते जाने पर ध्यान केन्द्रित करना है। निश्चित ही हमें ऊपर से समर्थन मिलना चाहिए तथा परिणाम चाहे जो हो, आगे बढ़ते जाने के सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है जिसे हम सोच भी सकें।

● प्रश्न : मैं अनेक कठिनाइयाँ झेल रहा हूँ और कभी कभी मेरी वर्तमान पारिवारिक स्थितियाँ मुझे निपट अकेला अनुभव करने पर

विवश कर देती हैं। मुझे नहीं मालूम कि हम यहाँ प्रचार जारी रख सकेंगे अथवा नहीं, और मैं यहाँ अपने कार्यक्रम हेतु ईश्वर की इच्छा नहीं समझ सकता।

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : कृष्ण चेतना एक भौतिक वृक्ष की भाँति नहीं है, इसलिये यदि हम अपने भावातीत ज्ञान में पर्याप्त दृढ़ नहीं हैं तो हम भ्रमित अवश्य हो जायेंगे। श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं :

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।

वास्तव में जो यह जानता है कि कृष्ण चेतना इस रूप में अवतरित हो रही है उसके साथ अपनी पूरी निष्ठा बनाये रख सकता है तथा वह श्रील गुरु महाराज की अवधारणा का ठीक से पालन कर सकेगा। भक्ति के जीवन की हत्या के लिये महामाया (भ्रम) सदैव हर एक को मारने का सदा प्रयास कर रही है, और इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि भक्त कभी कभी अकेला क्यों अनुभव करता है। पर जब व्यक्ति कृष्ण की दया और अपने जीवन के सच्चे पथ को देख लेता है तो वह सारी बातों की उपेक्षा कर सकता है परन्तु अपने निश्चय को नहीं त्याग सकता।

● प्रश्न : मैं अन्य लोगों को भक्ति परक जीवन त्यागते देखता हूँ और मैं कभी कभी अनिश्चय में पड़ जाता हूँ कि मुझे सेवा के अपने वर्तमान रूप को चलाते रहने के लिये प्रयास में संघर्ष करना चाहिए अथवा नहीं। क्या करें ?

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : मेरे पास श्रीश्रीगुरु गौरांग और उनके मिशन की सेवा के अतिरिक्त न कोई अन्य मार्ग है न कोई अन्य इच्छा। मैं जानता हूँ कि श्रील गुरु महाराज के सच्चे दास के लिये उनकी सेवा छोड़ने का कोई अवसर नहीं है।

यदि किसी ने श्रील गुरु महाराज एवं श्रील स्वामी महाराज की दिव्य क्रियाओं को वास्तव में देखा और उस पर विचार किया है, वह

आसानी से समझ सकता है कि सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् कृष्ण हैं तथा हमारा एकमात्र कर्त्तव्य उनकी सेवा है। भौतिक जगत् की ये कठिनाईयाँ हमारे इर्द गिर्द सदैव नदी की धारा की भाँति चक्कर काटती रहती हैं और हम, आत्मायें, उसमें ठोकर से उछलती रहती हैं। अब हमने यह शरीर प्राप्त कर लिया है जो एक नौका की भाँति है तथा हमें सावधानी के साथ बिना अपराध के, इस कष्टप्रद नदी को पार करना है। अन्यथा, यदि वह नौका चोट खाकर कहीं छिद्रग्रस्त हो जायेगी तो वह हिचकोले लेकर कठिनाइयों की नदी में डूब जायेगी। खतरा है, किन्तु हमें सदैव अपने आध्यात्मिक मार्ग दर्शकों में आशा और विश्वास होना चाहिए क्योंकि गुरु और कृष्ण हमारे त्राता तथा रक्षक हैं।

वस्तुतः पश्चिमी जगत् के ज्वलन्त मामलों के विषय में मुझे ठीक ज्ञान नहीं है पर एक सामान्य रूप में हम केवल कह सकते हैं :

पशु पक्षी हये थाकि स्वर्गे वा निरये।
तव भक्ति रहु भक्तिविनोद हृदये।।

हम कहीं भी, किसी स्थिति में और किसी परिस्थिति में रहें पर हमें भगवान् की भक्ति हेतु सजीव स्थान अवश्य बना लेना चाहिए।

● प्रश्न : मैं अनुभव करता हूँ कि मेरा इस जगत् में बार–बार शोषण ही हुआ है और मेरी इच्छा उससे अपने को निवृत्त कर लेने की है। आप मुझे क्या परामर्श दे सकते हैं ?

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : निस्सन्देह यह जगत् शोषण का स्थान है। अपने लाभ के लिये हर कोई दूसरों के शोषण का प्रयास कर रहा है। शास्त्र एवं अपने अनुभव दोनों के द्वारा हम इसे समझ सकते हैं। *जीवो जीवस्य जीवनम्*। जब तक दूसरों का शोषण नहीं करते हम एक पल के लिये भी जी नहीं सकते : हम साँस नहीं ले सकते, हम खा नहीं सकते, हम दौड़ अथवा चल नहीं सकते, यहाँ तक कि हम बात नहीं कर सकते। पर हमें समझना है कि एक अन्य धरातल भी है जो आवश्यक है : वह ऐसा जगत् है जो इस भौतिक पर्यावरण

का विरोध करता है। वह त्याग का जगत् कहलाता है किन्तु केवल उस आदर्श से हम वस्तुतः अपने को संतुष्ट नहीं कर सकते। वह दो धरातलों के मध्य की रेखा है और वहाँ जन्म तथा मृत्यु नितान्त अनुपस्थित हैं, यद्यपि अनुभवातीत सेवा सम्पर्क है ही नहीं तो उस अपच्छेदन से ऊपर के धरातल पर जाना संभव नहीं है।

श्रील रूप गोस्वामी ने स्पष्ट किया कि हमें मध्य मार्ग—युक्त वैराग्य अपनाना चाहिए जहाँ न संन्यास है न भौतिक आसक्ति। बिना तीव्र आसक्ति अथवा उत्कट विरक्ति के क्षोभरहित होकर हमें आगे बढ़ना है और कृष्ण चेतना के प्रति आसक्ति विकसित करनी है। धन और आवश्यक पदार्थों के रूप में जो कुछ सरलता से आयेगा हम स्वीकार कर सकते हैं, किन्तु हमारे लिये इस भौतिक धरातल की किसी भी वस्तु के लिये अधिक प्रयास व्यय करना उचित नहीं है। निश्चित ही कृष्ण हमारी आवश्यकताओं तथा हमारे लिये निर्धारित राशि के अनुसार हमारी पूर्ति करेंगे। श्रील गुरु महाराज ने सदा ही बल दिया कि हमें पर्यावरण के साथ झगड़ना नहीं है।

● प्रश्न : अपने को भक्ति परक सेवा में पूर्णतया नियोजित करने से पूर्व मैं कतिपय सांसारिक दायित्वों को पूरा कर लेना आवश्यक समझता हूँ, किन्तु अपने हृदय में मैं सदैव आशा रखता हूँ कि एक दिन मैं श्रील गुरु महाराज को कुछ सेवा अर्पित करने योग्य हो सकूँगा।

● श्रील महाराज ने उत्तर दिया : मैं जानता हूँ कि अनुभवातीत सेवा के मार्ग में माया सदैव बाधा डाल रही है। पर कोई नहीं सोच सकता कि वह समस्त उपद्रवों को दूर कर लेने के पश्चात् ही हरि सेवा में प्रवृत्त होगा। सार्वभौम समय की तुलना में हमारा जीवन काल बहुत छोटा है, अतः इस क्षण जो कुछ हमारे हाथ में है अपने आध्यात्मिक जीवन साधना में हमें उसी से प्रयत्न करना होगा। एक गीत में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने लिखा :

संसार निर्वाह करि जाइब आमि वृन्दावन
ऋणत्रय शोधिवारे करितेछी सुयतन
ए आशार नाहि प्रयोजन

यह असंभव है कि समस्त भौतिक कार्यों को समाप्त कर लेने के पश्चात् ही हम गुरु तथा वैष्णवों की सेवा लायक होंगे। ऐसा असंभव है। अतः हमें श्रील गुरु महाराज के निर्देशों को मानना चाहिए तथा उस रूप से ज्ञान के अस्त्र से भौतिक आसक्ति की गाँठ को काट डालना चाहिए तथा बिना विलम्ब के आगे बढ़ना चाहिए। हम इस भौतिक धरातल में कोई सुविधाजनक स्थिति नहीं पा सकेंगे : हमें यहाँ सदैव एक कठोर समय का सामना करना होगा, किन्तु जब, उस कठिन समय में, हम सच्चे मित्रों और श्रीगुरुदेव की दया प्राप्त कर लेते हैं, तो हम सारी ब।धाओं को आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। श्रील गुरु महाराज की सेवा के बिना जीने का हमारे सामने कोई उपाय नहीं है।

श्रील गुरु महाराज ने कहा, *"जे संकीर्तनाग्नि प्रज्वलित करियाछेन।'* सम्पूर्ण विश्व में श्रील गुरु महाराज ने संकीर्तन की यज्ञाग्नि प्रज्वलित की और हम उस अग्नि की लपटों की ईंधन सामग्री हैं, किन्तु यदि हम वहाँ से अपने को छिपाते हैं तो वह वास्तविक बचत नहीं है, अपितु आत्महत्या है। तात्पर्य यह है कि वहाँ हर वस्तु अनुभवातीत रूप से व्यवस्थित है और इसलिये हम जलने की संवेदना अनुभव नहीं कर सकते। केवल हम यज्ञ के भाव के अनुभवातीत सुखद पोषण का अनुभव कर सकते हैं।

।। श्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

अमूल्य निधि

श्रील भक्ति सुन्दर गोविन्द महाराज के पत्राचार से अन्य रत्न

जब सारे विश्व में भक्तगण श्रीकृष्ण के पावन नाम का कीर्तन तथा नृत्य कर रहे हैं तथा अपने सेवा भाव से दिव्य प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं, तब उस सामूहिक संकीर्तन में भाग लेकर हम सच्चा सुख और आनन्द अनुभव कर सकते हैं। एक बार जब हमने अपने जीवन का ध्येय देख लिया है तो वहाँ बिना रुके और बिना अपराध के अवश्य पहुँचना है।

कृष्ण खिलाड़ी हैं और हमारी वास्तविक स्थिति है कि हम उनके खेल–लीला में शाश्वत भावातीत खिलाड़ी हैं और यह कि जीवन पूर्णतया सुखद है। यदि एक बार हमें उस सत्य की झलक मिल जाये तो हम एक अच्छे खिलाड़ी होने के लिये बहुत दृढ़ निश्चयी हो जायेंगे। अच्छे खिलाड़ी को स्वयमेव खेलने का अवसर दिया जायेगा। हर दिशा से उसके पास सेवा आती है और वह लक्ष्य की ओर सदैव अग्रसर है।

यह कलियुग है और राक्षसों का प्रभाव बहुत सबल है। वे कृष्ण की सम्पदा के साथ मजा लेने का प्रयास कर रहे हैं और वह निरपेक्ष रूप से एक गलत और नारकीय भाव है। किन्तु किसी भी पर्यावरण में भक्त अपने दिव्य स्वामी तथा परमात्मा की सेवा करने का सदा प्रयास करेगा। यही भक्त का स्वरूप है।

इस कलियुग में यह महाप्रभु की दया है कि भगवान् कृष्ण के पावन नामों के कीर्तन मात्र से हर कोई भक्ति योग की साधना का एक अवसर पा जाता है। यदि हम बिना अपराध के कीर्तन करते हैं तो भगवान् की शाश्वत सेवा स्थिति के सुखद गन्तव्य तक पहुँचने की हमें आशा अवश्य होगी। हम पतित आत्मायें हैं पर यदि हम अच्छे विद्यार्थी बन सकें तो हमारे दिव्य स्वामी चतुराई से हमें माया के समुद्र से पार

ले जा सकते हैं। अनेक जन्मों के पश्चात् हमें यह शुभ और सौभाग्यशाली मानव रूप मिला है, और हमें इसका निष्ठापूर्वक तथा उचित ढंग से उपयोग करना चाहिए जिसका तात्पर्य है कि हमें अपने पूर्ण समर्पण के साथ गुरु की सेवा का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

हमारे प्रिय दिव्य गुरु, श्रील गुरु महाराज, केवल कृष्ण की सेवा जानते थे। उनका अन्य कोई दायित्व था ही नहीं। अब विश्व भर के अपने अनेक श्रद्धालु दासों की सहायता से मैं यहाँ अपनी पूर्ण सामर्थ्य से उनके मिशन को भलीप्रकार से चलाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

तब आप भी बिना अपराध के हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने का प्रयास कर सकते हैं, शास्त्रों को पढ़ सकते हैं, विशेषकर श्रील गुरु महाराज की पुस्तकों को, और इस मातृमठ की कुछ सेवा का प्रयास कर सकते हैं। मुझे ज्ञात है कृष्ण देखेंगे, और आप लाभान्वित होंगे।

कृष्ण हमारे सर्वशक्तिमान, पूर्णतया आत्मनिर्भर प्रभु हैं और इस रूप में हम कह नहीं सकते कि वे अपने प्रियदासों को किस प्रकार शुद्ध करना पसन्द करेंगे। इस भौतिक जगत् से एक बद्धात्मा को बाहर निकलकर अपने प्रिय भगवान् की सेवा की इच्छा करना विरली वस्तु है। किन्तु कृष्ण स्वयं ऐसी बद्धात्माओं से मिलने को बड़े उत्सुक रहते हैं। कभी कभी परिस्थितियाँ कठिन हो सकती हैं किन्तु हम और कर क्या सकते हैं ? हमारे पास अपने परम प्रिय श्रील गुरु महाराज की दया प्राप्त करने का महान सौभाग्य रहा है और उनकी कृपा से हमें अपने सुखद आध्यात्मिक गन्तव्य तक आगे बढ़ने की आशा है। कुछ महान लोगों के पीछे छूट जाने की आशंका है पर हमें कृष्ण चेतना की साधना साहसपूर्वक जारी रखनी है, जो भी परिस्थितियाँ हों।

मेरी सेवा में मेरे पास समस्याएँ भेजकर कृष्ण मेरा रक्त ले रहे हैं। और यदि मैं अपना रक्त नहीं देता, मैं वह सेवा पाऊँगा कैसे ? समस्याओं के साथ हम उल्लासपूर्वक आगे बढ़ेंगे। यदि समस्यायें नहीं आयेंगी तो हमें सोचना चाहिये कि एक विश्राम के भाव में दया प्राप्त करना संभव नहीं है। एक आराम के मनोभाव से वह संभव नहीं है।

मेरे जीवन में आद्यन्त समस्यायें रही हैं; किन्तु मुझे बड़ा सन्तोष है कि मैंने कोई समस्या गुरु महाराज को नहीं दी। सारी समस्याएँ जो निचली मंजिल पर आयीं चाहे ब्रह्मचारी आपस में लड़े हों, अथवा स्त्रियों में एक दूसरे से झगड़ा हुआ हो, अथवा जो भी हुआ हो, मैंने उन समस्याओं को वहीं सीढ़ियों से नीचे ही सुलझाया। मैंने गुरु महाराज को विघ्न पहुँचाने हेतु उन्हें ऊपर नहीं फेंका।

अनुभवातीत ज्ञान प्राप्त करना इतना आसान नहीं है। वह केवल श्रीगुरुदेव की कृपा और उनके चरण कमलों में पूर्ण समर्पण से ही संभव है अन्यथा माया कृष्ण की ही शक्तियों में से एक का भ्रमोत्पादक पर्यावरण, जीवों को सहजिया बनाकर अनुकरण के जगत् में पहुँचा देगा और इसप्रकार उन्हें उनके सौभाग्य से पूर्णतया वंचित कर देगा।

हम श्रील गुरु महाराज के दास हैं जिन्होंने अपने को एक श्रेष्ठतर परमहंस के रूप में प्रकट किया तथा अपने निर्देश एक व्यावहारिक रूप में दिये। इसलिये उनकी सेवा हेतु हमें पानी से दूध को पृथक् करने का प्रयास करना चाहिये। आजकल विश्व स्थिति सर्वत्र बड़ी कठिन अवस्था में है और सामान्यजन की मानसिकता नास्तिकता की दिशा में जा रही है किन्तु श्रीगुरु और गौरांग के प्रति हम अपनी भावातीत सेवा को बाधित नहीं होने दे सक़ते।

अपने गुरुदेव के अनुग्रह से हम उसी श्रेणी में व्यावहारिक रूप से अध्ययन और साधना कर रहे हैं जिसमें भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शिव, भगवान् नारद और भगवान् शुकदेव आदि। किन्तु जब हमारे साधनात्मक जीवन में कोई विनाश का विक्षोभ उपस्थित हो जाये जैसे कोई अराजकता आ गयी हो, तो हमें शनैः शनैः एक सुन्दर, कृपालु वैष्णव सत्संग प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए तथा श्रील गुरु महाराज के दिशा–निर्देशों के पालन का प्रयास करना चाहिये।

संकीर्तन का अर्थ है कि हम सब एक साथ पावन नामों का कीर्तन कर रहे हैं तथा मुक्त हृदय से अपने दिव्य गुरु और अपने भगवान् की सेवा कर रहे हैं। कृष्ण केवल इस योग्यता पर दृष्टि डालते हैं, किसी

अन्य पर नहीं। यहाँ हमारे प्रिय श्रील गुरु महाराज ने महान् संकीर्तन यज्ञाग्नि आरंभ की और मैं अद्यतन, दिन प्रतिदिन उस संकीर्तन अग्नि को उनके भक्तों के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व में फैलते देख रहा हूँ। सारे भक्त पूरे मन से उस अग्नि को ईंधन देने का प्रयास कर रहे हैं। हर कोई संकीर्तन यज्ञाग्नि में श्रील गुरु महाराज के उदात्तीकरण हेतु आहुति के एक पवित्र काष्ठ की भाँति अपने को अर्पित कर रहा है। इस प्रकार वह अपना निःशेष समर्पण कर रहा है। आहुति की यह सुविधा सुखपूर्वक जल रही है क्योंकि उससे उसके सहभागी कष्ट नहीं, अपितु शुद्धीकरण प्राप्त करते हैं। मैं पूरी तरह संतुष्ट अनुभव करता हूँ कि मैंने अपने दिव्य स्वामी की इच्छा के लिये अपने को अर्पित कर दिया है और कि आप सब भी सदा प्रपूज्यचरण की इच्छा पूर्ति का सतत् प्रयास कर रहे हैं।

आप सबसे मेरी केवल यही प्रार्थना है कि आप इस केन्द्रीय मठ पर दृष्टि रखें जहाँ देव–विग्रहों की तथा श्रील गुरु महाराज की अविराम सेवा है साथ ही संकीर्तन की सजीव यज्ञाग्नि जहाँ सतत् प्रज्ज्वलित है।

मुख्यालय एवं प्राप्तिस्थान

- **श्रीचैतन्य सारस्वत मठ**
  श्रीचैतन्य सारस्वत मठ रोड
  कोलेरगंज, नवद्वीप, नदिया
  पिन–741302
  फोन : (03472) 40086, 40752

- **श्रीचैतन्य सारस्वत कृष्णानुशीलन संघ**
  487 दमदम पार्क
  कलकत्ता–700055
  फोन : 5519175

- **श्रीचैतन्य सारस्वत मठ**
  विधवा आश्रम रोड
  गौरवत्सही, पुरी, उड़ीसा
  पिन–752001
  फोन : (06752) 23413

- **श्रील श्रीधरस्वामी सेवाश्रम**
  दसबिसा, पो0–गोवर्धन, मथुरा
  उत्तर प्रदेश–281502
  फोन : (0565) 815495

- **श्रील रूप-सरस्वती-श्रीधर सेवाकुंज**
  96, सेवाकुंज, वृन्दावन
  मथुरा, उत्तर प्रदेश 281121
  फोन : (0565) 444024

- **श्रीचैतन्य सारस्वत मठ**
  466 ग्रीन स्ट्रीट
  लन्दन, E 13 9DB, U. K.
  फोन : (0181) 5523551

- **श्रीचैतन्य सारस्वत सेवाश्रम**
  2900 नॉर्थ रोडिओ गल्च रोड
  सोकेल (कैलिफोर्निया) यू.एस.ए.
  फोन : (831) 4628712

- **श्रीचैतन्य सारस्वत श्रीधर मिशन**
  लट् 2, वेलटोना ड्राइव
  टैरानोरा, N.S.W. 2486
  आस्ट्रेलिया
  फोन : (61–75) 904371

- **श्रील श्रीधर-गोविन्द-सेवाश्रम**
  पो0 386, कैम्पस दो जोरदाउ
  एस.पी. ब्राजील
  फोन : (012) 2633168

- **श्रीचैतन्य सरस्वती श्रीधर सेवा आश्रम**
  ए.आर. कैले, 69–B नं. 537
  युकातान, सी.पी. 97370
  मैक्सिको
  फोन : (52–99) 828444

केवल एक मार्ग, एक गन्तव्य
और जीवन का एक ध्येय है,
और सफल होने के लिए
वह एकमात्र वस्तु है,
जिसे हमें समझना है।

• • •

एकबार जब हमने अपने जीवन का
ध्येय देख लिया है तो
सेवा करते हुए वहाँ बिना रुके
और बिना अपराध के
अवश्य पहुँचना है।

• Chitralekhaa 442415